Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

1984 No. 3 1988 Sep.

G. K. V. Lib Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151378

151378

PAYMENT PROCESSED
Vide Bill No 909 Dated 25.8.98
Anis Book Binder

CKI
151378

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

151378

(प्राच्यविद्याओं की प्रमुख त्रैमासिक हिन्दी-पत्रिका)

1984, 88

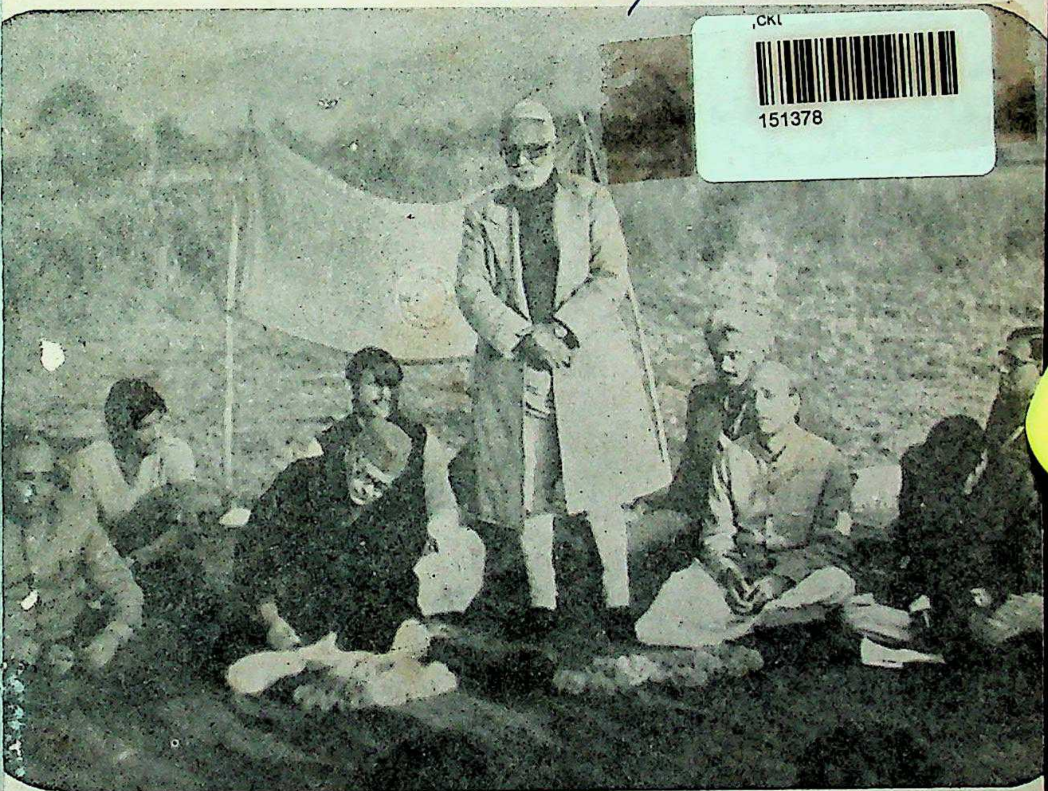

151378

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष : १९८४] (अक्तबर से दिसम्बर तक) [अङ्क : ३

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द,
समीक्षक कुलगुरु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
तथा
भारत-रत्न श्रीमती इन्दिरा गाँधी
स्मृति-अंक

सम्पादक
डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'
पी-एच०डी०, डी०लिट्०
संयुक्त-सम्पादक
डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
एम०ए०, पी-एच०डी०

वर्ष : १९८४]　　(अक्तूबर से दिसम्बर तक)　　[अङ्क : ३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक

श्री बलभद्रकुमार हूजा

कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० राधेलाल वार्ष्णेय, जनसम्पर्क अधिकारी

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

प्रकाशक

वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—	वैदिक दीपमाला	पं० सत्यकाम विद्यालंकार	१
२—	सम्पादक की कलम से		२
३—	कुलपुत्र सुनें, कुलपरम्परा के संवाहक सुनें !	श्री बलभद्रकुमार हूजा	१२
४—	गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के पुरोधा स्वामी श्रद्धानन्द	वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	१६
५—	नव-जागरण के प्रणेता : स्वामी श्रद्धानन्द	डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा	२०
६—	परम्परागत भारतीय काव्य-चिन्तन और आचार्य शुक्ल जी की लोकमंगल सम्बन्धी अवधारणा	डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी	२४
७—	श्यामपुर-कांगड़ी क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण प्रस्तर प्रतिमाएँ	डॉ० आर०सी० अग्रवाल	२६
८—	आचार्य का स्वरूप	श्री वेदप्रकाश शास्त्री	३४
९—	बालक के विकास में माता-पिता एवं शिक्षकों का योगदान	श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी	४१
१०—	छान्दोग्योपनिषद का महत्त्व	आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार	४६
११—	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : व्यक्ति और आलोचक	श्री भगवानदेव पाण्डेय	४८
१२—	परिसर परिक्रमा		५५
	(अ) दयानन्द निर्वाण-शताब्दी व्याख्यानमाला	श्री भोपालसिंह	५७
	(आ) विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्रौढ़-शिक्षा के प्रगति-क्रम का निरीक्षण	डॉ० त्रिलोकचन्द	६०
	(इ) गुरुकुल विश्वविद्यालय में माइक्रोबायोलोजी	डॉ० वी०डी० जोशी	६३
१३—	निकष पर (पुस्तक-समीक्षा)	समीक्षक	६९
	(अ) कल्पसूत्र	डॉ० मानसिंह	७१
	(आ) नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती	श्री बलभद्रकुमार हूजा	७४
	(इ) ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्यम् खण्ड १-२	डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'	७६
	(ई) बृहस्पति देवता	डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार	८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रह्लाद' के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का विवरण

काँगड़ी ग्राम में आयोजित दस-दिवसीय राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर का उद्घाटन कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र ने किया। चित्र में श्री कुलाधिपति, कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, डॉ० सुरेश त्यागी और डॉ० वी० डी० जोशी बैठे हुए हैं तथा कुलपति सम्बोधित कर रहे हैं।

—※—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

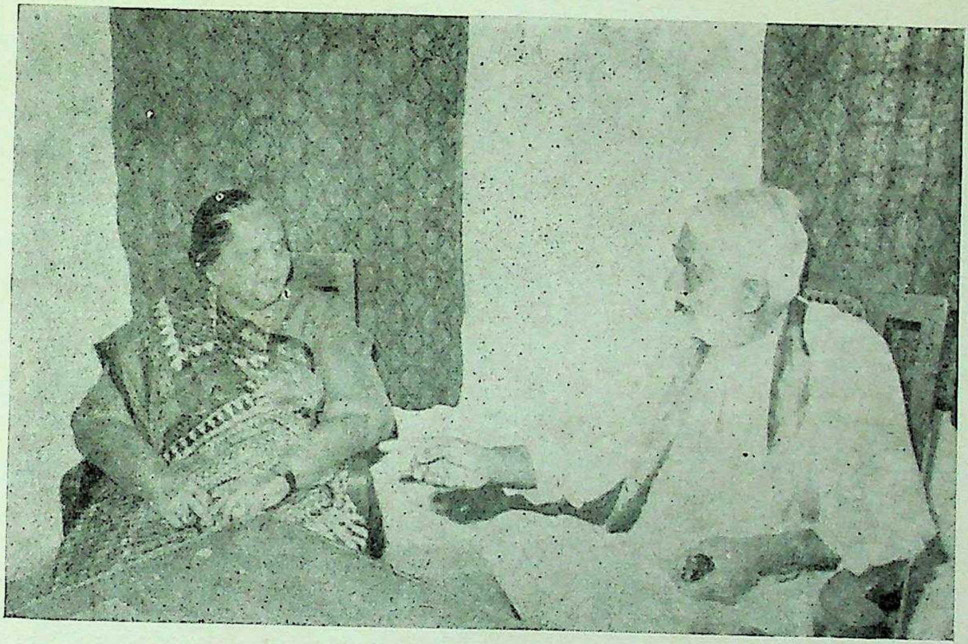

१३ अक्तूबर को विश्वविद्यालय परिसर में विश्वविद्यालय अनुदान–आयोग की अध्यक्ष सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्रीमती डॉ० माधुरीशाह पधारीं। डॉ० शाह ने विश्वविद्यालय की प्रगति पर हार्दिक संतोष प्रकट किया। (चित्र में) विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा, श्रीमती शाह को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित शैक्षिक क्रिया-कलापों तथा योजनाओं का परिचय देते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

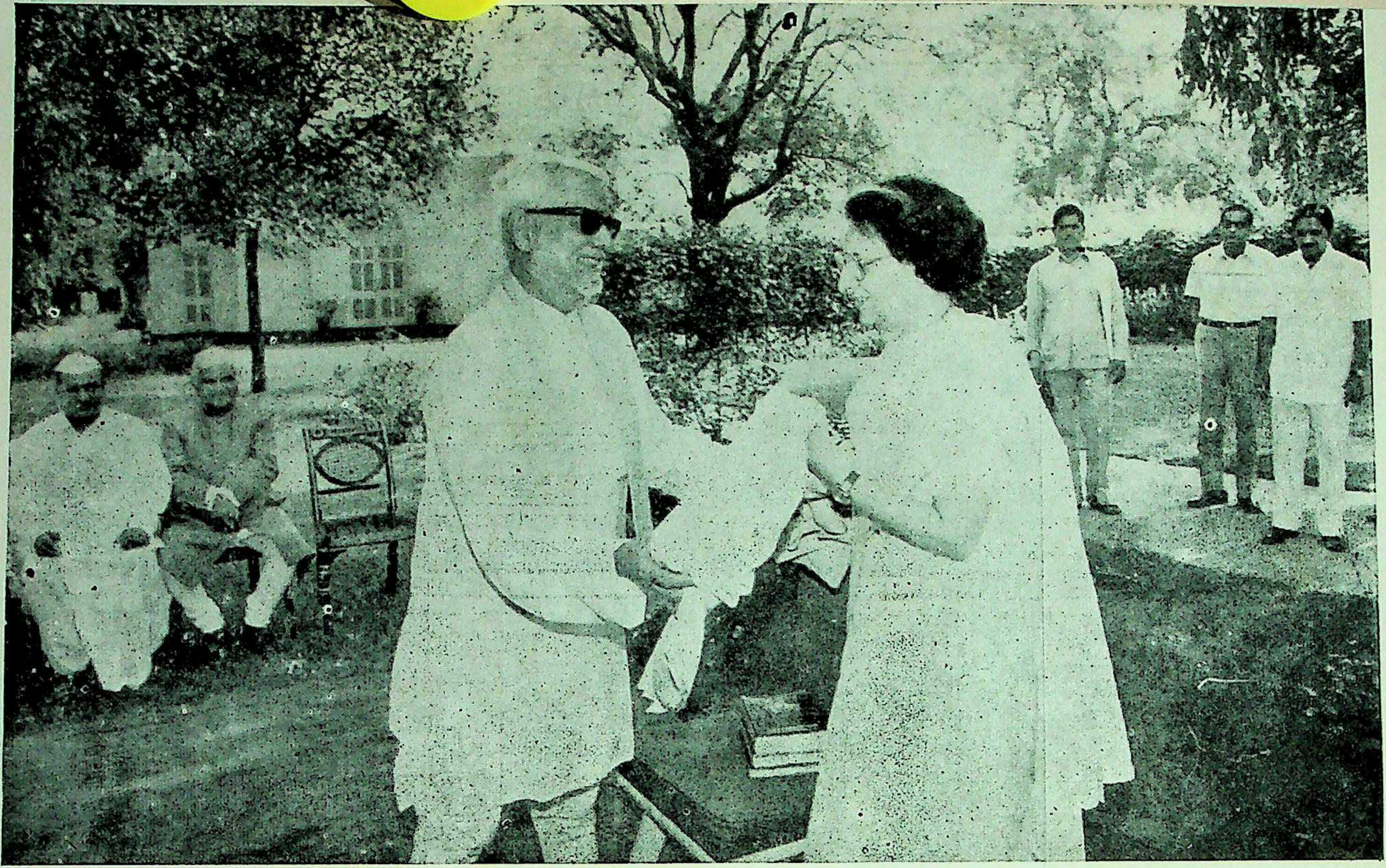

आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड प्रणीत "वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त" ग्रन्थ के विमोचन-समारोह में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को उत्तरीय प्रदान करते हुए कुलपति बलभद्रकुमार हूजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक दीपमाला

गूहता गुह्यं तमो, वियात विश्वमत्रिणम्
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।
(ऋक्—१,८६.१०)

खोलो ज्योतिर्द्वार हृदय के, खोलो ज्योतिर्द्वार ।
गूढ़ अँधेरा छाया मन में,
गहन उदासी है जीवन में,
टूट गया आधार, खोलो ज्योतिर्द्वार ।
जीवन का यह पथ दुर्गम है,
आँखों के आगे सब भ्रम है,
कौन करेगा पार, खोलो ज्योतिर्द्वार ।

एह्यूषु ब्रुवाणि ते अग्न इत्येतरा गिरः
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।
(ऋक् ६,१६.१६)

ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ।
आज नैनों के छलकते अश्रुओं से—
ही करूँगा मौन मैं वन्दन तुम्हारा ।

गीत मेरे थम गये हैं,
गान में अक्षम हुए हैं ।
हे हृदयवासी निकट अपने बुलाओ,
कर सकूँ जिससे कि पद-वन्दन तुम्हारा ।

—पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार
(वैदिक वन्दना गीत—पृष्ठ १०४,१०५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की कलम से

कुलपिता शत-शत नमन लो

आधुनिक भारत के पुनर्जागरण के प्रस्तोता तथा गुरुकुल काँगड़ी विश्व-विद्यालय के संस्थापक, कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक धर्मान्ध ने २३ दिसम्बर १६३६ को गोली मारकर हत्या कर दी । स्वामी जी के भौतिक जीवन का अन्त हुआ किन्तु एक पवित्र उद्देश्य तथा मानव-निर्मात्री संस्था के रूप में स्वामी जी मौत के सिर पर पाँव रख कर आज भी जीवित खड़े हैं। हर २३ दिसम्बर को आने वाला सबेरा उस संन्यासी के अमर बलिदान की गैरिक चादर जब ऊषा देवी के हाथ में थमाता है तब लगता है धार्मिक और सामाजिक स्वतन्त्रता और विकास का सूना आकाश एक दिव्य चमक में डूब गया है, इतिहास की स्याही कुंकुम बन गई है और आर्यसमाज का कीर्तिरथ दिग्विजय के पथ पर खड़ा किसी अविचल और निर्भय हुतात्मा सारथी की खोज कर रहा है । उनके निधन पर–कहना चाहिए उनकी वीरगति पर स्पृहा करते हुए **महात्मा गाँधी** ने कहा था— 'मृत्यु एक वरदान है, परन्तु उस योद्धा के लिए वह दुगुना वरदान है जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है । मुझे उनकी मृत्यु पर शोक नहीं । मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देह-लीला समाप्त हो गई तथापि वह जीवित हैं । वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित हैं जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे । ऐसी शान-दार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध है, वस्तुतः बधाई के पात्र हैं । वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जिए और अन्त में एक वीर की तरह ही उनकी मृत्यु हुई ।' **महाकवि रविन्द्र नाथ ठाकुर** ने श्रद्धांजलि में अपने उद्गार व्यक्त करते हुये लिखा— 'सत्य के प्रति श्रद्धा के मूर्तरूप इस श्रद्धानन्द को हम उनके चरित्र के मध्य सार्थक आकार में देख रहे हैं । उनकी मृत्यु कितनी ही दुःखदायक क्यों न हुई हो किन्तु इस मृत्यु ने उनके प्राण एवं चरित्र को उतना ही महान् बना दिया है ।' **राष्ट्ररत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद** उन्हें भारत का सांस्कृतिक अग्रदूत मानते थे । उनका यह कथन कितना सार्थक है कि उनकी निर्भीकता, साहस व स्पष्ट-वादिता के गुणों को अंग्रेजी सरकार अच्छी तरह जानती थी । जो लोग काले कानून के विरोधी आन्दोलन के समय दिल्ली के चाँदनी चौक में मौजूद न भी थे, उनके हृदय-पट पर स्वामी जी की वह निर्भीक मूर्ति अमिट रूप से चित्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस समय स्वामी जी ने अंग्रेजी गोलियों और संगीनों के सामने अपना सीना खोलकर हृदय की निर्भीकता तथा उच्चता का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित किया। उनकी उस शुद्ध तथा उच्च भावना ने जामा मस्जिद के मिम्बर से उनसे उपदेश कराया और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का मनोरम दृश्य दिखलाया और उसी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता और निर्भीकता के कारण आततायी के हाथों से शहादत पाई। भारत के आधुनिक इतिहास में स्वामी जी का स्थान प्रथम सांस्कृतिक पथप्रदर्शक का है। जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के बाद पंजाब के आतंकपूर्ण वातावरण में कांग्रेस के महाधिवेशन का सयोजन उनके निर्भीक व्यक्तित्व का ही परिणाम था। सत्य, अहिंसा और सदाचार पर आधारित राजनीति का उन्होंने समर्थन किया। विदेशी परिधान, रहन-सहन खान-पान तथा विचारधारा का उन्होंने विरोध किया। वह कौम की जरूरतें पूरी करने वाले राष्ट्रभक्त नौजवान पैदा करना चाहते थे इसीलिये उन्होंने पण्डित मोतीलाल नेहरू के एक पत्र के उत्तर में कहा था कि वह ब्रह्मचर्याश्रम पद्धति पर आधारित प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्धार करना चाहते हैं। अछूत कहलाने वाली जातियों को विराट् आर्य जाति की धारा में मिलाना चाहते हैं, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर समासीन करना चाहते हैं तथा अहिंसा के क्रियात्मक प्रचार और पददलित मनुष्यों तथा स्त्री जाति के उद्धार के लिये प्रयत्न करना चाहते हैं। कहना न होगा, स्वामी जी अपने महान् उद्देश्य में सफल हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द ने पंजाब तथा दिल्ली में शिक्षा तथा हिन्दी प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अंग्रेजी तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सामंजस्य के साथ वैदिक तथा संस्कृत साहित्य और दर्शन के पठन-पाठन पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। गुरुकुल काँगड़ी उनके इन्हीं सपनों का साकार रूप है। स्त्री-शिक्षा समर्थक होने के कारण १८६१ ई० में जालंधर में उन्होंने कन्या महाविद्यालय की भी स्थापना की। इस विद्यालय की ओर से 'पाँचाल पण्डिता' नामक पत्रिका अंग्रेजी और हिन्दी में निकली जिसने नारी-जागरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

स्वामी जी ने उर्दू में 'सद्धर्म प्रचारक' निकाला, बाद में उसे हिन्दी में कर दिया गया। साप्ताहिक उपदेशों के साथ शिक्षा तथा राजनीति पर उनके लेख हिन्दी में छपने लगे। 'श्रद्धा' नामक पत्रिका भी स्वामी जी ने निकाली। 'सद्धर्म प्रचारक' उनके पुत्रों हरिश्चन्द्र वेदालंकार तथा इन्द्र विद्यावाचस्पति के निरीक्षण में प्रकाशित होता रहा। स्वामी जी की हिन्दी पर उर्दू गद्य के ओज का पूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। उनसे प्रेरणा लेकर इन्द्र जी ने विजय, अर्जुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सत्यवादी साप्ताहिक निकाले । कुछ समय बाद 'अर्जुन' दैनिक हो गया । अर्जुन ने कई स्नातक पत्रकारों को पत्रकारिता का क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया था । स्वामी जी के दौहित्र श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने भी १९३३-३४ में दिल्ली से 'नवयुग' नामक एक दैनिक का सम्पादन किया । स्वामी जी की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' १९२४ में ज्ञानमण्डल काशी से छपी । उनसे पूर्व जीवनी साहित्य तो लिखा गया पर आत्म-कथा लेखन के क्षेत्र में हिन्दी में भाई परमानन्द कृत 'आपबीती' (१९२१) के अतिरिक्त और कोई कृति नहीं थी । १९१० में सत्यानन्द अग्निहोत्री कृत 'मुझमें देव-जीवन का विकास' एक कृति अवश्य प्रकाशित हुई थी पर यह कृति साहित्यक गुणों से पूर्ण नहीं है । महात्मा-गांधी को आत्मकथा का अनुवाद हिन्दी में हरिभाऊ उपाध्याय ने १९२७ में किया था ।

स्वामी जी का व्यक्तित्व इतना महान् था कि महात्मा गाँधी और श्री दीनबन्धु एण्ड्रूज़ उन्हें भी 'महात्मा' कहकर ही सम्बोधित करते थे । महात्मा जी तो गुरुकुल देखने के लिये इतने अधीर हो गये थे कि ८ अप्रैल १९१५ को गुरुकुल के उत्सव पर कांगड़ी पधारे । उन दिनों वह कच्छी पगड़ी बाँधा करते थे । महात्मा जी ने महामना मालवीय जी से कहा था कि महात्मा तो मुंशी राम हैं जो गंगा किनारे प्राचीन ऋषियों की परम्परा को पुनरुज्जीवित कर रहे हैं । रेम्जे मैकडानल्ड उनके ऋषि जीवन से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें लिखने को विवश होना पड़ा— 'एक महान्, भव्य और शानदार मूर्ति— जिसको देखते ही उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है, हमारे आगे हमसे मिलने के लिये बढ़ती है । आधुनिक चित्रकार ईसा मसीह का चित्र बनाने के लिए उसको अपने सामने रख सकता है और मध्यकालीन चित्रकार उसे देखकर सेंट पीटर का चित्र बना सकता है ।'

उनके बलिदान पर्व पर हम कुलवासी उन्हें डबडबाये नेत्रों से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने कांगड़ी ग्रामोद्धार का महान् यज्ञ श्रद्धांजलि के रचनात्मक अंग के रूप में ही प्रारम्भ किया । महान् विचारक श्री दीनबन्धु एन्ड्रूज ने कहा भी था कि जब-जब उनकी बलिदान तिथि आयें तब-तब उनके सच्चे प्रेमियों का ध्यान उनके प्रिय पात्र गरीबों और दलितों की ओर जाना चाहिये और उन दलितों-गरीबों को भी परमात्मा की सन्तान समझना चाहिए ।

आत्मत्याग, कर्तव्यपालन तथा कष्टसहन की प्रेरणा लेकर हमें कहना होगा—

तू ये दो जहाँ की नियामतें उन्हें बख्श दे जो तलब करें,
मुझे बन्दगी का शऊर दे, तेरी बन्दगी मेरा काम है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शताब्दी समारोह

हिन्दी ही नहीं, भारतीय भाषाओं के साहित्य-समीक्षकों में मौलिक समीक्षाकार आचार्य शुक्ल की जन्म शताब्दी पूरे देश में सोत्साह मनाई जा रही है। शुक्ल जी का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में १८८४ में हुआ। इनके पिता पण्डित चन्द्रवली शुक्ल मीरजापुर जिले में सदर कानूनगो थे। उन पर मुस्लिम तहजीब और उर्दू का गहरा रंग था, पोशाक भी अभारतीय और उस पर दाढ़ी, वे किसी मुसलमान नवाब की तरह प्रतीत होते। एक बार वे चुनार का दौरा कर रहे थे, हिन्दू दंगाइयों ने उन्हें मुसलमान समझकर पकड़ लिया। यदि चुनार के पण्डित राजाराम उनसे परिचित न होते तो वे उस दिन निश्चय ही मार डाले गये होते। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के भ्रातुष्पुत्र श्री चन्द्रशेखर शुक्ल ने लिखा है कि १८८० के बाद आर्य समाज की लहर उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में उमड़ आयो। पण्डित चन्द्रवली जी भी उससे बच न सके। आर्य समाज के कतिपय सिद्धान्तों का उन पर असर पड़ा। सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उन्होंने खरीद कर पढ़ी। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में आर्य समाज के विचारों का अच्छा प्रचार हुआ। उन्हें आर्य समाज के तर्क पसंद आए। धीरे-धीरे पुराणों की ऊट-पटांग बातों में लोगों का विश्वास घटने लगा। इस तरह वे आर्य समाज की पुस्तकें और प्रचार पुस्तिकाएँ पढ़ने के सिलसिले में हिन्दी से अधिकाधिक परिचित होते गये।[1] तात्पर्य यह है कि आचार्य शुक्ल का परिवार आर्य विचारधारा का परिवार था। उन पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

शुक्ल जी की प्रारंभिक शिक्षा एंग्लो संस्कृत जुबली स्कूल में हुई। मिडिल पास करके वे लंदन मिशन स्कूल में भर्ती हुए। इसके हैडमास्टर श्री काशीनाथ बरुआ आसामी ब्राह्मण थे, जो ईसाई हो गये थे। प्रधानाचार्य एफ० एफ० लांगमैन थे जो अंग्रेजो और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। लांगमैन से उक्त दोनों विषयों का गहरा ज्ञान उन्हें मिला। १६ वर्ष की वय में ही उन्होंने एडिसन के 'एसे ऑन इमेजिनेशन' का हिन्दी अनुवाद कर दिया था। हिन्दी के प्रसिद्ध समीक्षक तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० नामवर सिंह ने साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित शुक्ल शताब्दी समारोह में कहा था कि अपने समकालीन समीक्षकों में शुक्ल जी इतने जागरूक पाठक थे कि इधर रिचर्डस् की पुस्तक बाजार में आई और उधर उन्होंने हिन्दी में उसके धुर्रे उड़ा दिये। क्रोचे की उन्होंने बखिया उधेड़ी और साधारणीकरण तथा ध्वनि-विवेचन में भरत मुनि से लेकर आनन्दवर्धन तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशवप्रसाद मिश्र तक को बिना किसी दबाव और साहित्यिक आतंक के ललकार दी। शुक्ल जी के पट्टशिष्य, हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है कि हिन्दी में नित्य अनुसंधान हो रहा है। यह कैसे कहा जाये कि कुछ नहीं हो रहा है, हो अवश्य रहा है पर शुक्ल जी की कसौटी पर कसते हैं तो हम जहाँ के तहाँ हैं। आधुनिक युग में उपन्यास कहानी का जैसा वर्गीकरण शुक्ल जी ने कर दिया, कविता का जैसा निरूपण प्रस्तुत कर दिया, पश्चिमी आलोचना का समुद्र पी जाने वाले भा उतना न उगल सके। शुक्ल जी ने समीक्षा की जो दृष्टि हिन्दी को दी वह किसी आधुनिक भारतीय भाषा या साहित्य में नहीं है।[2] जो उन्हें रिचर्ड्स या डंटन से प्रभावित कहते हैं वे अंग्रेजी से अभिभूत हैं। रिचर्ड्स को उन्होंने साक्षी रूप में पेश किया है। डंटन की आधी बात भो पूरी नहीं मानते। चरित्र-चित्रण का अपना नपना उन्होंने तुलसीदास में अपनाया।

अलंकारों का अपना निकष निकाला उन्होंने। न मम्मट के कहने पर चले न बेन के इशारे पर। फिर भी ऐसे मेरु-सुमेरु को बात की फूँक से उड़ा देना चाहते हैं, कलके जोगी आज के महंत। वास्तविकता यह है कि शुक्ल जी की वाणी जिस कवि को ऊँचे उठा गई वह ऊँचे उठ गया, जिसे गिरा गई वह गिर गया।

शुक्ल जी ने हिन्दी में एक स्वतन्त्र समीक्षा-निकाय की स्थापना ही कर डाली। ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक आलोचना की नींव उन्होंने ही डाली। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में प्राचीन कवियों की समीक्षा तथा नये साहित्य की प्रवृत्तियों के आकलन में साहित्यकार की अन्तर्वृत्तियों का सामाजिक परिस्थितियों के साथ सामंजस्य दिखाते हुए साहित्यिक धाराओं के विश्लेषण, वर्गीकरण तथा उपस्थापन में उन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धति का भी उपयोग किया। धार्मिक तथा साहित्येतर मूल्यों को वह साहित्य से बाहर की वस्तु मानते रहे। नाथपंथी तथा रहस्यवादी काव्य को उन्होंने कभी शुद्ध कविता नहीं माना। शान्ति निकेतन के प्रभावापन्न हिन्दी-आचार्य शुक्ल जी से तथा उनके परिकर के समीक्षकों से इसीलिए अन्त तक खिचे रहे। शुक्ल जी प्राचीन रसपद्धति की उपयोगितावादी व्याख्या सामाजिक नैतिकता के आधार पर करते रहे। योरुप में उन्नीसवीं शताब्दी में बैन्थम तथा ऑस्टिन आदि दार्शनिक कला को सामाजिक तथा नैतिक चेतना से जोड़ चुके थे। शुक्ल जी की यहाँ नवीनता इस बात में भो है कि उन्होंने साहित्य में आरोपित धार्मिक, नैतिक तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता का विरोध किया है। रस्किन और टॉलस्टाय की तरह वह धार्मिक व्याख्या के लिये हठी नहीं, उनकी दृष्टि विशुद्ध साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। रक्षा और रंजन, करुणा और प्रेम उनके काव्यास्वाद में निहित है। रूपसौंदर्य, भावसौंदर्य और कर्मसौंदर्य के प्रतिपादन तथा विश्लेषण में ही वह कवि और समीक्षक के कार्य की सार्थकता मानते हैं। शुक्ल जी के शिष्यों में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल, जनार्दन प्रसाद झा द्विज तथा डा० केशरी नारायण शुक्ल ने पाठसम्पादन, मध्यकालीन काव्य, आधुनिक काव्य, कथा, नाटक पर समीक्षाएँ लिखीं। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी ने जायसी, सूर, तुलसी पर तर्कपूर्ण, परस्पर सम्बद्ध, भावप्रधान तथा लोकसंग्रही दृष्टि से ग्रन्थ रचना की। मार्मिक जीवनानुभूतियों की हृदयग्राही अभिव्यक्ति की दृष्टि उन्होंने सर्वत्र अपनाई। आधुनिक काव्यप्रवृत्तियों के विवेचन में उन्होंने बाद में अपना स्वर भी बदल लिया। १९३१-३२ तक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा १९३८ में डा० नगेन्द्र ने छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों और रूपशिल्प पर अधिकृत विवेचन प्रकाशित कराया। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में इस तथ्य को स्वीकार किया। तात्पर्य यह है कि शुक्ल जी नवीन ज्ञान और स्थापनाओं के विरुद्ध न थे, वह परीक्षा के बाद उचित और उपयोगी को स्वीकार करते थे। शुक्ल जी के इतिहास में नवीन तथ्यों की तो खोज नहीं है पर उपलब्ध सामग्री का ऐसा विराट् खाका खींच दिया गया है कि उपलब्ध नवीन तथ्यों का श्रमपूर्वक लगाया गया ढेर भी मूल स्थापनाओं को सर्वथा खण्डित करता नहीं जान पड़ता। चिन्तामणि, रसमोमांसा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, जायसी तथा तुलसी ग्रन्थावली उनकी कालजयी रचनाएँ हैं।

वे सिद्धहस्त निबन्धकार थे। बुद्धचरित और शशांक के अनुवाद से उन्हें कुशल अनुवादक भी कहा जा सकता है। वे कवि थे। उनकी प्रथम कविता भारत और बसंत आनन्द कादम्बिनी में १८९६ में तथा मनोहर छटा १९०१ में सरस्वती में छपी। उनकी प्रसिद्ध कविता मधुस्रोत १९३० में सुधा में छपी। नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी कविताओं का संकलन प्रकाशित कराया है। उन्होंने १९०८ से १९२७ तक सभा में रह कर शब्दकोष का सम्पादन किया। इसके प्रधान सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास ने अपनी आतमकहानी में लिखा है कि यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का श्रेय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगो। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। कोश ने शुक्ल की को बनाया और कोश को शुक्ल जी ने।"

शुक्ल की अंग्रेजी के उद्‌भट् विद्वान थे। वही ऐसे व्यक्ति थे जो पढ़ाई और परीक्षा का कार्य अंग्रेजी माध्यम द्वारा करा सकते थे। यूनिवर्सिटी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब नियम ही वैसा था। मालवीय जी ने १६१६ में ही उन्हें काशी में अध्यापक बना दिया था। हिन्दी पद्यों के भावों को चटपट अंग्रेजी में बदल देना उनके बायें हाथ का खेल था। डा० श्यामसुन्दर दास १६२१ में विश्वविद्यालय आये थे। उनसे पूर्व शुक्ल जी निबन्ध-लेखन पढ़ाया करते थे। लाला भगवानदीन जी अलंकारशास्त्र तथा प्राचीन साहित्य के पण्डित थे। केशव की रामचन्द्रिका तथा कविप्रिया की टीका लिखकर उन्होंने आचार्य मिश्र के शब्दों में हिन्दी प्राध्यापकों की इज्जत बचाई थी पर अंग्रेजी के अभ्यास के न होने से वह विश्व-विद्यालय में उस आसन पर न बैठ सके जिस पर बाबू श्यामसुन्दर दास बैठे। पराधीन भारत के विश्वविद्यालय की यह विडम्बना थी। शुक्ल जी सभा के अध्यक्ष रहे, उन्होंने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन किया। १६३७ में वह विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद पर आसीन हुए तथा २ फरवरी १६४१ में हृदय गति रुक जाने से उनका निधन हुआ। अन्तिम समय में उनके पास तसव्वुफ और सूफी मत के लेखक पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय थे जिन्हें शुक्ल जी शाह साहब कहा करते थे। उनके निधन का समाचार सुनते ही काशी विश्वविद्यालय के प्रो-वाइसचांसलर वयोवृद्ध श्री श्यामाचरण डे विह्वल होकर मार्ग में ही गिर पड़े थे। १६४१ की माधुरी में छपी उनके निधन पर रोहिताश्व कुमार अग्रवाल की ये पंक्तियाँ उनकी मृत्यु का पूर्वाभास कराने के लिये पर्याप्त हैं—

'शुक्ल जी ने शुक्रवार ३१ जनवरी सन् ४१ तक क्लास लिया। मैथिली-शरण जी की यशोधरा पढ़ा रहे थे जिसमें बुद्ध कहते हैं— 'क्षणभंगुर भव राम राम।' आलोचना करते हुए उन्होंने कहा—बुद्ध देव संसार से कहते हैं—हे नाश-वान् जगत्! तू मुझे छोड़ दे नहीं तो मैं ही तेरे हित के लिये तुझे छोड़ दूँगा। कौन जानता था कि वे स्वयं संसार से विदा ले रहे हैं। चलते समय उन्होंने एक बार फिर कहा--आदाब अर्ज़! राम-राम!'

आचार्य शुक्ल के पट्ट शिष्य और मेरे गुरुवर्य आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, शुक्ल जी के निधन पर पढ़ी गई श्रद्धाँजलि के दो श्लोक सुनाया करते थे, जिनका भाव है— साक्षात् आलोचना के रूप में जायसी, तुलसी और सूर के काव्य-वैभव की पहचान कराने वाली तथा साहित्य के इतिहास की सृष्टि कराने वाली हिन्दी ही जिस महापुरुष के निधन पर हा-हा करती रो पड़ी थी, यदि काव्य-कला के न जानने वाले छिद्रान्वेषी उनकी निन्दा करें तो कोई आश्चर्य न होगा क्योंकि वे असज्जन गिद्ध के समान दूसरों के दोष ही देखा करते हैं—

आलोचना विभव विग्रह निर्विशेषः,
श्री जायसी तुलसि सूर गतिः स चासीत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषेतिहास सुसमीक्षितकाव्यसृष्टेः,
हा हेति यस्य निधनेन रुरोद हिंदी ॥
छिद्रानुकर्षणपरैरपरैर्यदि स्या-
न्निदाकृता सकल काव्यकलाऽनभिज्ञैः ।
तच्छोभनं महदसत्यपदं न चैत-
द् दुष्टः प्रसह्य परदूषण गृध्र दृष्टिः ॥

इन शब्दों के साथ हिन्दी समीक्षक कुलगुरु आचार्य शुक्ल को प्रणाम।

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल—पृष्ठ ३१

२—शुक्ल जी को आधुनिक भारत के संश्लिष्ट काव्यशास्त्र का मेरुदण्ड मानना चाहिये।

डा० नगेन्द्र— भारतीय समीक्षा-पृष्ठ ३३

———

भारत-रत्न श्रीमती इन्दिरा गाँधी का बलिदान

३१ अक्टूबर ८४ का दिन विश्वशान्ति के इतिहास में धूम्रकेतु की तरह आया। भारतीय राजनीतिक वर्चस्व का सूर्य श्रीमती इन्दिरा गाँधी के रूप में अस्त हो गया। प्रधानमंत्री आवास ही में उनके सुरक्षा सिपाहियों ने उनकी गोली मार कर हत्या कर दी। स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा गाँधी के बलिदान के द्विभुज में यह तीसरी भुजा जुड़ी। इतिहास का फीता इस त्रिवेणी की बलि-दान-धारा को नापने के लिए बहुत छोटा पड़ गया है।

इन्दिरा जी का जीवन और मृत्यु दोनों शानदार रहे हैं। निर्गुट सम्मेलन का आयौजन और फिर निर्गुट राष्ट्रों का नेतृत्व कर अपनी प्रतिभा, सूझबूझ, संगठन-क्षमता, निर्भीकता और विश्व-संवेदनशीलता के कारण उन्होंने तीसरी शोषणमुक्त शान्तिप्रिय दुनियाँ के निर्माण की नींव डाली। सार्वजनीन लोक-प्रियता तथा धर्मनिरपेक्षता के प्रतीक रूप में उनका वर्चस्व न सह सकने के कारण वह एक बड़े षड्यंत्र का शिकार बनीं। दीन–दलितों की मसीहा तथा शक्ति-सम्पन्न समृद्ध भारत की निर्माता, आज हिमालय के हिम-मण्डित शिखरों में अनन्त निद्रा में लीन होकर भी भारतीय युवकों को ऊँचा और ऊँचा उठने की प्रेरणा दे रही हैं। लोकतंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता के लिए बलिदान हो जाने वाली इस राष्ट्र-जननी को हमारे शत-शत प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९ नवम्बर १९१७ को उनका जन्म प्रयाग के आनन्द भवन में हुआ था। उनके पिता पण्डित जवाहरलाल नेहरू और पितामह पण्डित मोतीलाल नेहरू स्वतन्त्रता संग्राम की रीढ़ थे। मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पन्न होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द रहे और इस प्रकार नेहरू परिवार को स्वामी जी का आशीर्वाद तथा सक्रिय सहयोग सहज प्राप्त हो गया। कांग्रेस के क्रिया-कलापों का प्रतीक था आनन्द भवन। अतः इन्दिरा जी को शैशव में घुट्टी के साथ राष्ट्रप्रेम, त्याग, तप और स्वतन्त्रता के लिए मर-मिटने की प्रेरणा प्राप्त हुई। बड़ी होने पर जहाँ उन्होंने १९३४ में शान्ति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त की वहाँ १९३६ में आक्सफोर्ड के समरविल कालेज में प्रविष्ट होकर वह पाश्चात्य साहित्य, राजनीति तथा दर्शन की अध्येता बनी। वह भारतीय सांस्कृतिक इतिहास, धर्म, दर्शन, साहित्य तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का अनोखा संगम थीं। इंग्लैंड में रहते हुए वह कृष्णमेनन से प्रभावित हुई तथा लेवर पार्टी में शामिल होकर मजदूर दल के अधिवेशनों में भी भाग लेने लगी। १९४२ में उनका विवाह श्री फिरोज गाँधी से हुआ तथा विवाह के छह महीने वाद ही वह १३ महीने के लिए जेल चली गई। १९४४ से १९४६ के बीच उनके पुत्र राजीव और संजय का जन्म हुआ। श्री राजीव योग्य माता के योग्य पुत्र हैं और उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का संकल्प लेकर प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए हैं। उनसे देश को बड़ी आशाएँ हैं।

१९४७ में देश आज़ाद हुआ। साम्प्रदायिक दंगों के बीच महात्मा गाँधी की प्रेरणा से वह निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़ीं। आपसी सद्भाव के निर्माण में उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। नेहरू जी के प्रधानमंत्री होने पर वह उनकी मुख्य सहायक रहीं। ढेबर भाई के कांग्रेस अध्यक्ष का पद छोड़ने पर २ फरवरी १९५९ को वह बयालीस वर्ष की आयु में काँग्रेस का अध्यक्ष चुनी गईं। ९ फरवरा को काँग्रेस संसदीय पार्टी ने जब उनका सम्मान किया तो पण्डित नेहरू ने कहा था—'मुझे उनके अच्छे मिजाज पर, काम करने की शक्ति पर, ईमानदारी और संजीदगी पर गर्व है।' इन्दिरा जी उनकी पुत्री ही नहीं, शिष्या भी थीं। १९३० से १९३३ तक विश्व इातहास की झलक दिखाने के लिए नेहरू जी ने इन्दिरा जी के नाम जो पत्र लिखे थे, वह उनका पत्राचार द्वारा किया गया शिक्षण ही था। १९६४ में नेहरू जी के निधन के बाद श्री लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमण्डल में उन्हें सूचना-प्रसारण मंत्रालय का काम सौंपा गया। २४ जनवरी १९६६ को वह भारत की तीसरी तथा पहली महिला प्रधानमंत्री बनीं। पाकिस्तान के साथ युद्ध में विजय, बांगला देश का निर्माण, नक्सलवाद का ध्वंस, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, उपग्रह प्रणाली का विकास, पोकरन का अणु विस्फोट, काँग्रेस का विभाजन, गरीबी उन्मूलन, बीस सूत्री कार्यक्रम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-उपग्रह और दूर-संचार तकनीक का विकास, पंजाब के आतंकवाद का सामना तथा गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों का नेतृत्व उनके राजनीतिक जीवन की उपलब्धियाँ हैं। अपने कार्यकाल में वह सबसे विवादास्पद रहीं और विवाद के घेरे में पड़कर भी वह प्रगति की राह से विचलित नहीं हुईं, यह थी उनकी अडिगता और स्थितप्रज्ञता।

उनका सारा जीवन चुनौतियों का सामना करते हुए व्यतीत हुआ। जिस धर्मनिरपेक्षता, समानता और लोकतंत्र के लिए वह जीवन भर कार्य करती रहीं, उन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए उन्हें अपनी जान गँवानी पड़ी। यह दुर्घटना राष्ट्र की एकता को तोड़ने का षड्यंत्र करने वालों की चुनौती है, जिसका सामना इन्दिरा जी के बताए हुए मार्ग पर ही चल कर किया जा सकता है। उनके अभाव से देश लड़खड़ा अवश्य गया है, देश की आंतरिक व्यवस्था को भी छिन्न-भिन्न करने की चेष्टा की गई है, पर यह चुनौती मुश्किल तो है, असाध्य नहीं। देश की सम्बद्ध परम्पराओं को टूटने से बचाने के लिए हमें एकजुट होना है और इसी रूप में हम दिवंगत प्रधानमंत्री को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं। उनके बलिदान का स्वर्णकलश युग-निर्माण की पवित्र गायत्री को जन्म देगा। कौन कहता है कि उनसे युग का अन्त हुआ ? अब तो नये युग का प्रारम्भ होगा।

वर्तमान अंक

प्रह्लाद का यह अंक कुलपिता स्वामी श्रद्धानंद तथा समीक्षक कुलगुरु आचार्य शुक्ल की स्मृति में संयुक्तांक है। इस अंक के लेखक, सह-सम्पादक तथा प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने सामग्री, सुझाव तथा सहायता देकर अंक आपके हाथों तक पहुँचाने में सुकरता प्रदान की।

— डा० विष्णुदत्त राकेश
सम्पादक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलपुत्र सुनें, कुलपरम्परा के संवाहक सुनें !

बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति

प्रतिवर्ष २३ दिसम्बर को अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान-दिवस आता है। हम उस दिन प्रातःस्मरणीय स्वामी जी को श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हैं और समझते हैं कि हमारा कर्त्तव्य पूरा हो गया। स्वामी जी ने अपने बलिदान से पूर्व जो वसीयत लिखी थी, उसमें विशेष रूप से कहा था कि गुरुकुल की अपनी सभी विशेष परम्पराओं के साथ रक्षा की जाय। मैं ८ वर्ष पहले यही संकल्प लेकर इस पुण्यभूमि में प्रविष्ट हुआ। मुझे बताया गया कि गुरुकुल में अराजकता है और पठन-पाठन का कार्यक्रम भी व्यवस्थित और सुचारु रूप से नहीं चल पा रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की जो जाँच समिति मुझ से पूर्व आई थी उसने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से लिख दिया था कि विश्वविद्यालय स्वामी जी द्वारा निर्धारित तथा आयोग द्वारा अपेक्षित लक्ष्य को पूर्ण करने में असमर्थ रहा है, अतः इसका विश्वविद्यालय के समकक्ष स्तर समाप्त कर, इसे मेरठ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालय बना देना चाहिए। आयुर्वेद महाविद्यालय तब हमारा अंग था। वहाँ के अध्यापकों को कई मास से वेतन नहीं मिला था। वेतनभोगियों की उस दुर्वह स्थिति का अनुमान लगाना भी क्लेशकर है। मेरे आग्रह पर तत्कालीन कुलसचिव डा० गंगाराम ने विश्वविद्यालय फंड से तीस हजार रुपया देकर उनके बकाया वेतन का भुगतान किया। आर्थिक संकट से विपन्न विश्वविद्यालय की समस्याओं में गहराई से उतर कर मैंने विचार किया और पाया कि विश्वविद्यालयीय संविधान के संशोधन के बिना विश्वविद्यालय दलगत राजनीति की काली छाया से उबर कर ज्ञान और समृद्धि का सूर्य परिसर में नहीं उगा सकता। विश्वविद्यालय के गुरुजन तथा शिष्य अनुसंधान, शिक्षा तथा प्रसार के कार्य में दत्तचित्त होकर आगे नहीं बढ़ सकते। फलतः इस हेतु पद्मभूषण डा० सूर्यभानु की अध्यक्षता में १० सदस्यीय समिति का निर्माण हुआ जिसने संविधान में उपयुक्त संशोधन प्रस्तावित किए। संतोष का विषय है कि आज विश्वविद्यालय के पास ऐसा संविधान है जो उसके स्वरूप की रक्षा तथा स्थायित्व में पूर्ण सहायक हो सकेगा। इसके लिए श्री पिल्ले तथा डा०गंगाराम धन्यवाद के पात्र हैं। इस संविधान में यह व्यवस्था है कि कुलपति के मनोनयन में अनुदान आयोग का प्रतिनिधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा ताकि कुलपति पद के दो-दो दावेदार न पैदा हो सकें जिसके कारण पिछले वर्षों में गुरुकुल की खिल्ली उड़ती रही है। कुलाधिपति की चयन-प्रक्रिया भी बदली गई। किसी भी विद्वान् को अब इस पद हेतु तीन वर्ष के लिए चुना जा सकता है। इन दो मुख्य संशोधनों से गुरुकुल में स्थायित्व आया।

गुरुकुल का प्रारंभ में कार्यभार सँभालते ही गुरुजन के परामर्श और सहयोग से गुरु-शिष्य परम्परा का उद्धार करने के लिए हमने श्रद्धानन्द, दयानन्द, लाजपतराय, भगत सिंह तथा नेहरू परिवारों का गठन किया और आश्रमों में दैनिक संध्या-हवन का प्रबन्ध किया। शनैः शनैः गुरुकुल का वातावरण बदला और गुरुकुल प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। वैदिक मैगजीन को पुनर्जीवन देकर 'वैदिक पाथ' तथा गुरुकुल पत्रिका के नियमित प्रकाशन की व्यवस्था में डा० हरगोपाल सिंह तथा पं० भगवद्दत्त वेदालंकार ने पूर्ण सहयोग दिया। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री डा० चेन्ना रेड्डी ने ७६ के दीक्षान्त पर आकर गुरुकुल की प्रगति पर पूर्ण संतोष व्यक्त किया। इस बीच मैंने ग्रीष्मावकाश में इंग्लैण्ड, कनाडा जाने का कार्यक्रम बनाया। मैं गुरुकुल के परिपार्श्व में वहाँ के शिक्षण-संस्थानों का अध्ययन करना चाहता था। इस बीच अराजकतत्वों ने गुरुकुल पर अधिकारपूर्वक कब्जा कर लिया। विद्यालय-विभाग के प्रधानाचार्य कर्नल राजपाल को धमकी देकर पृथक् कर दिया गया। उन्हें अनुशासनबद्ध नवीन शिक्षात्मक क्रिया-कलापों के लिए विशेष रूप से विद्यालय में बुलाया गया था। गुरुकुल की दशा फिर अधर में लटक गई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने क्योंकि इन्हें मान्यता नहीं दी, अतः जनवरी ७७ में ये लोग गुरुकुल छोड़कर चले गए। हमने गुरुकुल का ताना-बाना नये सिरे से बुना। ७७ के दीक्षान्त पर डा० प्रतापचन्द्र चंदर, शिक्षा मंत्री भारत सरकार स्नातकों को आशीर्वाद देने पधारे। मई में पुनः स्थिति में परिवर्त्तन हुआ। आयुर्वेद कालेज के पृथक्करण के लिए आन्दोलन चला। आर्य प्रतिनिधि सभा ने विवश होकर इस माँग को स्वीकार कर लिया तथा ७७ में इसका सरकारीकरण हो गया। यह वर्ष विश्वविद्यालय के इतिहास में भयंकर भूकंप लेकर आया और फिर तीन वर्ष तक विश्वविद्यालय परिसर में आतंक, त्रास तथा अमानवीय यातनाओं का जो दौर शुरू हुआ, उसका उल्लेख करते हुए सिर नीचा हो जाता है। जुलाई ८० में न्यायालय के निर्णय के बाद यह कुहरा छँटा, गुरुकुल में नये युग का प्रारंभ हुआ तथा शिक्षा मंत्रालय और अनुदान आयोग ने गुरुकुल के वास्तविक अधिकारियो को मान्यता दी। कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र के नेतृत्व में पुनः विधिवत् कार्य प्रारंभ हो गया। अनुदान नियमित रूप से मिलने लगा। जुलाई ८१ में दीक्षान्त पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश श्री एच०आर० खन्ना ने स्नातकों को आशीर्वाद देते हुए जहाँ इस संस्थान की महान परम्पराओं और राष्ट्रीय सेवाओं का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किया वहाँ इसकी प्रगति पर प्रसन्नता भी प्रगट की। विज्ञान मेला का आयोजन प्राचार्य डा० सुरेश त्यागी ने किया, इसका उद्घाटन रुड़की विश्वविद्यालय के कुलपति डा० जगदीश नारायण ने किया था। इसी वर्ष विज्ञान को जनसाधारण के साथ जोड़ने के लिए डा० विजयशंकर ने 'आर्य-भट्ट' पत्रिका निकाली। प्रोफेसर ओम्प्रकाश मिश्र ने जिपनेजियम की व्यवस्था की। तत्कालीन शिक्षा सचिव और बाद को गृह सचिव श्री टी० एन० चतुर्वेदी इसके उद्घाटन के लिए पधारे। पुरातत्त्व संग्रहालय तथा श्रद्धानन्द संग्रहालय आज देशी-विदेशी पर्यटकों तथा शोधार्थियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसकी संकल्पना का पूर्ण श्रेय डा० विनोद चन्द्र सिन्हा को है। ८२ के दीक्षान्त पर लोकसभा के अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ तथा ८३ में महा-महिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी गुरुकुल आए। प्रगति की दृष्टि से गुरुकुल अब बहुत आगे आ गया था। हमें प्रसन्नता है कि हम स्वामी श्रद्धानंद जी के स्वप्नों को साकार करने में कुछ अंशों तक कृतकार्य हो सके। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा आर्य संन्यासी डा० सत्यप्रकाश सरस्वती, डी० एस० सी० ने अपने दीक्षान्त भाषण में गुरुकुल की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा भविष्य के लिए हमारा मार्गदर्शन किया।

छटी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने हेतु मार्च ८४ में विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की समिति यहाँ आई, उसने गुरुकुल के लक्ष्य को समझा तथा कमियों का आकलन किया। समिति ने अनुभव किया कि गुरुकुल के पास एक सन्देश है जो विश्व भर के लिए उपयोगी हो सकता है। गुरुकुल के गुरुजन इसे फैलाने के लिए कृत संकल्प हैं। आयोग ने इसकी संस्तुति पर ५० लाख रुपये की स्वीकृति तथा दस प्रोफेसरों के पदों की स्वीकृति प्रदान की। परिसर का विस्तार हुआ। प्रोफेसरों के नवीन आवास-गृहों का निर्माण इसी योजना के तहत हो रहा है। अभी हाल में ही कई वर्ष बाद हमारे अनुरोध पर अनुदान आयोग की अध्यक्ष श्रीमती माधुरी शाह पधारीं। गुरुकुल को अधुनातन शिक्षा से संवलित करने के लिए कम्प्यूटर देने का आश्वासन भी श्रीमती शाह ने अन्य योजनाओं की स्वीकृति के साथ दिया। गुरुकुल के सभी क्रिया-कलापों, संग्रहालय, पुस्तकालय, आश्रम-व्यवस्था को देखकर उन्होंने हर्ष प्रकट किया। २५ वर्ष का योजनाबद्ध कार्यक्रम उन्हीं के संकेत पर तैयार किया जा रहा है, विशेषकर सातवीं योजना बनाने की तैयारी हो रही है जिसे शीघ्र शिक्षा पटल, कार्य परिषद् तथा शिष्ट परिषद् की स्वीकृति मिलने पर अग्रसर किया जायगा।

इधर हम नवीन स्फूर्ति लेकर भावी योजनाएँ बनाने मे व्यस्त थे कि प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का निधन हो गया। इस हृदय-विदारक घटना से पूरा देश दहल गया। इन्दिरा जी स्वामी श्रद्धानंद की राह पर अमरलोक में चली गई। उनकी हत्या से देश को अपूरणीय क्षति पहुँची, विश्वशान्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अभियान को धक्का लगा तथा तीसरी दुनियाँ का एक भास्वर नक्षत्र अस्त हो गया। वह जोनावार्क की तरह शहीद हुईं। शहादत से वह राष्ट्र-माता के रूप में प्रतिष्ठत हो गईं। उन्होंने अपनी जिंदगी में बड़े उतार-चढ़ाव देखे। जिस धैर्य से उन्होंने उनका सामना किया वह अनुकरणीय है। उनके युग में देश ने कृषि, तकनीकी शिक्षा, विज्ञान, अंतरिक्ष-अनुसन्धान तथा सामरिक और सामाजिक क्षेत्रों में चतुर्मुखी उन्नति की। उन्होंने सुदृढ़ और समृद्ध भारत की नींव डाली। देश उनके बताये मार्ग पर आस्थावान् होकर आगे बढ़ेगा। श्री राजीव गाँधी ने ऐसे संकट में देश को अस्थिरता से बाहर निकाल लिया। वह योग्यमाता के योग्य पुत्र सिद्ध हुए। काँग्रेस के नेताओं ने अपनी महत्त्वाकांक्षा को छोड़कर जो गुरुवर बोझ श्री राजीव के कंधों पर डाल दिया उसे वह सफलता के साथ वहन कर सकेंगे, इसका मुझे विश्वास है। मैं सदैव आशावादी रहा हूँ और गुरुकुल के स्नातकों से अपेक्षा करता हूँ कि आशा और आस्था का दीप उनके हाथों में हमेशा आलोकित होता रहेगा।

इस अवसर पर मैं, जहाँ श्रीमती इन्दिरा गाँधी को कुलवासियों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, वहाँ लोकतंत्र, स्वच्छ, भ्रष्टाचारमुक्त प्रशासन तथा धर्मनिरपेक्षता के लिए प्रतिबद्ध श्री राजीव गाँधी को बधाई भी देता हूँ। देश का नवयुवक 'प्रह्लाद' के रूप में खड़ा हो; बिना डगमगाए वह साधना पथ पर अग्रसर हो तथा राष्ट्र की सम्पूर्ण आकांक्षाओं की पूर्त्ति में सहायक हो, मेरी यही आकांक्षा है।

आइए, कुलपिता को नत शिर होकर हम नमन करें। उसी पुण्य नमन के साथ बलिदान-पर्व पर मैं आपका आह्वान करता हूँ—गुरुकुल को अभी और आगे ले जाना है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना,
और पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे पार नहीं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गुरुकुल शिक्षा पद्धति के पुरोधा स्वामी श्रद्धानन्द"

वेद मार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

स्वामी श्रद्धानन्द महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त और महान शिष्य थे। महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व में एक अद्भुत सम्मोहनी शक्ति थी, जो भी उनके सम्पर्क में आ जाता था वही उनका अनुयायी और भक्त बन जाता था। स्वामी श्रद्धानन्द अपने यौवन-काल में ही महर्षि दयानन्द के सम्पर्क मे आ गये थे। उनका पहला नाम मुंशी राम था। वे अपने पिता के साथ बरेली में रहते थे। एक अवसर पर महर्षि दयानन्द अपने प्रचार-कार्य के प्रसंग में बरेली पधारे। युवक मुंशीराम ने भी महर्षि के भाषण सुने, युवक मुंशीराम महर्षि के भाषणों और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुये। उन दिनों मुंशीराम की विचारधारा भौतिकता-वादी थी और वे परमात्मा की सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे। महर्षि की विचारधारा ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने वाली पूर्ण आस्तिक विचारधारा थी। मुंशीराम ने परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में महर्षि से प्रश्नोत्तर किये, महर्षि ने मुंशीराम की ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध दी गई सभी युक्तियों और तर्कों का प्रत्याख्या कर दिया। इस पर मुंशीराम ने महर्षि से कहा कि आपने युक्ति और तर्क से तो परमात्मा की सत्ता सिद्ध कर दी है और मैं निरुत्तर हो गया हूँ पर मुझे परमात्मा में विश्वास नहीं हुआ है। महर्षि ने उत्तर दिया कि बेटा! परमात्मा की कृपा से एक दिन उनकी सत्ता में विश्वास भी हो जायेगा। महर्षि के साथ इस वार्तालाप के अनन्तर मुंशीराम, महर्षि दयानन्द के परम भक्त और अनुयायी बन गये और उनकी धारणा बन गई कि महर्षि जो कुछ कहते हैं वह सर्वथा सही और सत्य है। और उनके विचारों के अनुसार चलकर ही मानव जाति का सर्वाङ्गीण अभ्युदय और कल्याण हो सकता है और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि मैं महर्षि के विचारों के प्रचार और प्रसार में अपना समग्र जीवन और शक्ति समर्पित कर दूँगा। उनका आगामी सारा जीवन जिस रूप में विकसित हुआ, उन्होंने अपने जीवन में जो विविध प्रकार के कार्य किये, वे सब महर्षि के प्रति इसी समर्पण की भावना का परिणाम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द की विचारधारा और कार्यक्रम बहुमुखी थे। वे मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपने मौलिक विचार रखते थे और मानव को उन्हीं के अनुसार ढालना चाहते थे जिससे कि मानव सही अर्थों में आदर्श मानव बन सके।

मानव किस प्रकार का बनेगा, यह इस पर निर्भर करता है कि उसके आरम्भिक बाल्यकाल तथा यौवनकाल को किस प्रकार के विचारों और परिस्थितियों में ढाला गया है। दूसरे शब्दों मे मानव का जीवन इस पर निर्भर करता है कि उसे आरम्भ के बीस-पच्चीस वर्षों में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इसके लिए महर्षि के व्यापक कार्यक्रम में शिक्षा के सम्बन्ध में भी अपना एक नवीन और मौलिक कार्यक्रम था। महर्षि की परिभाषा में उनके इस कार्यक्रम का नाम गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली है। महर्षि ने सत्यार्थ-प्रकाश और अपने अन्य ग्रन्थों में गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का विस्तार से वर्णन किया है। महर्षि के विचारों के प्रचार काय और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज के अन्य विभिन्न कार्यक्रमों में जी-जान से जुट जाने के पश्चात् मुंशीराम, महात्मा मुंशीराम कहलाने लगे थे। महात्मा मुंशीराम ने महर्षि द्वारा प्रतिपादित गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का गहराई से अध्ययन और मनन किया था तथा वे इस निश्चय पर पहुँचे थे कि मानव जाति की वास्तविक उन्नति और पूर्ण कल्याण तभी हो सकता है जब कि बच्चों को गुरुकुल-शिक्षा प्रणाणी के अनुसार शिक्षा दी जाये। यह विचार दृढ़ और परिपक्व हो जाने पर उन्होंने सन् १९०० में हरिद्वार के निकट कांगड़ी नामक ग्राम में, हिमालय की उपत्यका में, भागीरथी के तट पर जगत्प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की।

गुरुकुल काँगड़ी में उन दिनों पूर्णरूप से ऋषि के ग्रन्थों में निर्दिष्ट पाठ-विधि के अनुसार शिक्षा दी जाती थी और छात्रों की समस्त दिनचर्या भी महर्षि द्वारा निर्दिष्ट दिनचर्या के अनुसार ही रहती थी। बालकों को पूर्णरूप से वैदिक-आर्य-संस्कृति के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया जाता था। वेद पढ़ाये जाते थे, ब्राह्मण ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे, उपनिषदें पढ़ाई जाती थीं, दर्शन पढ़ाये जाते थे, गीता और मनुस्मृति ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे, तथा महर्षि दयानन्द के अपने सत्यार्थ-प्रकाश आदि ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। संस्कृत भाषा की ऊँची और गहरो योग्यता के लिए साहित्य के ग्रन्थ तथा अष्टाध्यायी और महाभाष्य के रूप में व्याकरण पढ़ाया जाता था।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य पर अत्याधिक बल दिया जाता है। महर्षि दयानन्द ने छात्रों को ऐसी सभी बातों व परिस्थितियों से दूर रखने पर बल दिया है, जिनसे छात्रों के मन में कामुकता के विचार जागृत होने को आशंका हो, इसीलिए महर्षि ने अपनी पाठ-विधि में अश्लील काव्य ग्रन्थों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ाने का निषेध किया है। इस कारण गुरुकुल कांगड़ी में अश्लील काव्य-ग्रन्थ नहीं पढ़ाये जाते थे। विभिन्न काव्य-ग्रन्थों से अश्लीलतारहित अच्छे प्रकरणों का संग्रह करके गुरुकुल अपने स्वतन्त्र पाठ्य-ग्रन्थ छपवाता था तथा पञ्चतन्त्र, रघुवंश, साहित्यदर्पण आदि के अश्लील स्थलों को निकालकर गुरुकुल उनके अपने शुद्ध संस्करण छपवाता था। और इन्हीं संशोधित संस्करणों को छात्रों को पढ़ाया जाता था।

महर्षि ने अपनी पाठ-विधि में अन्य देशीय भाषायें पढ़ाने का भी निर्देश किया है और भाँति-भाँति के विद्या-विज्ञानों की शिक्षा पर भी बल दिया है। महर्षि के इन्हीं निर्देशों के आधार पर महात्मा मुन्शीराम ने गुरुकुल कांगड़ी में इतिहास, भूगोल, गणित, रसायन (कैमिस्ट्री), भौतिकी (फ़िजिक्स), आयुर्वेद, कृषि आदि विज्ञानों एवं अंग्रेजी भाषा के अध्यापन की भी पूर्ण व्यवस्था की थी।

उस समय के सरकारी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में केवल पाश्चात्य विषयों की ही शिक्षा दी जाती थी। उनमें पढ़ने वाले छात्र पाश्चात्य भाषा, इतिहास और अन्य विद्या-विज्ञानों में तो पारंगत होते थे परन्तु उन्हें अपने देश की भाषा, इतिहास तथा विद्या-विज्ञानों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं होता था। उनमें पढ़ने वाले छात्र शरीर से भारतीय होते हुये भी विचारों और संस्कृति की दृष्टि से यौरोपीय से बन जाते थे। उधर बनारस, गया, नदिया आदि की प्राचीन पद्धति पर चलने वाली संस्कृत पाठशालाओं में प्राचीन विषयों का ही अध्ययन–अध्यापन होता था और वह भी प्रायः काव्य, व्याकरण और दर्शनों तक सीमित रह गया था। इन पाठशालाओं में पढ़ने वालों को आधुनिक इतिहास और विद्या-विज्ञानों का बिल्कुल भी परिज्ञान नहीं होता था तथा एक प्रकार से ये लोग पुराने अंधकार युग में ही पड़े रहते थे। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में जो कुछ सिखाया जाता था वह एकाँगी और अधूरा होता था।

गुरुकुल में प्राचीन भारतीय विद्या-विज्ञानों की शिक्षा भी दी जाती थी और उसके साथ ही आधुनिक विद्या-विज्ञानों के शिक्षण की भी पूरी व्यवस्था थी। और इस प्रकार महर्षि दयानन्द के विचारों के अनुसरण पर महात्मा मुन्शीराम द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय और उसमें चलाई गई शिक्षा-पद्धति, शिक्षा के जगत् में एक नई क्रान्तिकारी चीज़ थी। प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर आरम्भ की गई, छात्रों के प्रतिदिन की दिन-चर्या तो शिक्षा के जगत् में एक सर्वथा नई क्रान्तिकारी वस्तु थी, जिसमें छात्र और गुरु एक घर के वासियों को भाँति एक दूसरे के निकट रहते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्रों की सब प्रकार की गतिविधियों पर गुरुजनों की पूरी आँख रहती थी। छात्र संयम का, तपस्या का, सादगी का, शारीरिक श्रम और स्वावलम्बन का जीवन व्यतीत करते थे।

महात्मा मुन्शीराम द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय विश्व भर के शिक्षा जगत् में चर्चा का विषय बन गया था। संसार भर के शिक्षा-शास्त्री गुरुकुल को देखने के लिए आया करते थे तथा समाचार-पत्रों में उन लोगों की गुरुकुल के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक और आशाभरी टिप्पणियाँ और विवेचनायें छपा करती थीं। इस प्रकार महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) इस युग में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के एक नये पुरोधा के रूप में भारत के आकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र बन गये थे।

महात्मा मुन्शीराम के जीवन का एकमात्र लक्ष्य अपने जीवन को महर्षि दयानन्द के विचारों और शिक्षाओं के अनुसार ढालना और चलाना था, वे जो कुछ कहते थे उसे अपने निजी जीवन में भी पूर्णरूप से उतार कर दिखाते थे। उन्होंने गुरुकुल की स्थापना की, और गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का प्रचार किया, तो सबसे पहले अपने पुत्रों को पढ़ने के लिए गुरुकुल में प्रविष्ट किया। गुरुकुल के लिए जनता से धन मांगने के लिए निकले तो पहले अपनी सारी सम्पत्ति गुरुकुल के लिए दान दे दी। महर्षि दयानन्द व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों की पद्धति के अनुसार बिताने पर बल देते थे। महात्मा मुन्शीराम ने अपने गुरु के आदेश पर चलते हुये इसी पद्धति के अनुसार अपना जीवन बिताया। गृहस्थ के पश्चात् महात्मा मुन्शीराम के रूप में उनका जीवन वानप्रस्थ का रहा, फिर उसके उपरान्त वे संन्यासी हो गये और स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से जगत् में विख्यात हुये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आने के पश्चात् जो अनेक महान् कार्य किये हैं, उन सबका इस लघुलेख में उल्लेख कर सकना सम्भव नहीं है। उन्हें तो "जीवन-वृत्तान्त" तथा "आर्य समाज के इतिहास" ग्रन्थों में पढ़ना चाहिये, इन पंक्तियों में तो केवल शिक्षा के क्षेत्र में किये गये उनके कार्य का अति संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

—※—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव-जागरण के प्रणेता : स्वामी श्रद्धानन्द

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग

जब भारत के लोग पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से भ्रमित होकर अपनी संस्कृति के आधारभूत मूल्यों को ही भूल रहे थे, उस समय भारतमाता का एक सपूत उठा जिसने आर्य संस्कृति की महनीय महत्ता का सन्देश स्वामी दयानन्द से सुना था। उदात्त आदर्शों और भव्य-भावनाओं को लेकर उन्हें क्रियात्मक रूप देने को वह उद्दत हो गया। वह दिव्य पुरुष अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द थे।

स्वामी जी का जन्म गांव तलवन, जिला जालन्धर सम्वत् १९१३ में हुआ। उनका बचपन का नाम मुन्शीराम था। सबसे छोटी सन्तान होने के कारण पिता नानकचन्द को वे सर्वाधिक प्रिय थे। यौवन, धन, सम्पत्ति तथा प्रभुत्व के प्राप्त होने पर मुन्शीराम दिग्भ्रमित हो गये, लेकिन लाहौर में आर्य समाज के उस समय के प्रधान लाला साईंदास का प्रेमपूर्ण सम्भाषण तथा मुनिवर गुरुदत्त के योग्यताभरे व्याख्यानों ने नास्तिक मुन्शीराम को परम आस्तिक बना दिया। इतना ही नहीं उनके आचरण पर लगे हुये धब्बे भी धीरे-धीरे धुलने लगे थे। मुन्शीराम के जीवन में यह महान् परिवर्तन था। वे समाज-सेवा की ओर उन्मुख हुये। उनके हृदय में यह भावना दृढ़ हो गयी कि जब तक ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये गुरुकुल की स्थापना नहीं होगी, ऋषि दयानन्द का स्वप्न पूरा नहीं होगा। गुरुकुल की स्थापना की आवश्यकता को उन्होंने प्रस्ताव रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के समक्ष प्रस्तुत किया जहाँ इसे स्वीकार कर लिया गया। अपने अथक् प्रयत्नों के फलस्वरूप गुरुकुल को स्थापित करने में वे सफल रहे।

गुरुकुल शिक्षा की प्रथम विशेषता यह थी कि शिक्षा अपनी मातृभाषा के माध्यम से दी जाये। यह प्रथम मंत्र था जिसे गुरुकुल के कर्णधार ने अपनाया। मातृभाषा को प्रोत्साहन मिला। विद्वानों ने नवीन विषयों पर हिन्दी में ग्रन्थ लिखने प्रारम्भ किये और नवीन विचारों को जनता तक पहुंचाने के लिये 'सद्धर्म प्रचारक भेजें' जैसे हिन्दी पत्र का प्रकाशन होने लगा। देश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

१51378

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता आन्दोलन में गुरुकुल कांगड़ी और उसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द का योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा। महर्षि दयानन्द से देश-प्रेम की दीक्षा लेकर सभी आर्य-नेताओं ने स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर अपना कुछ न कुछ अवश्य न्यौछावर किया किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द ने तो इस वेदी पर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। ३० मार्च सन् १९१९ की घटना को भुलाया नहीं जा सकता। दिल्ली के चाँदनी चौक की विशाल सड़क पर ब्रिटिश संगीनों के सामने स्वामी जी अपनी खुली छाती तान कर खड़े हो गये। जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के पश्चात् अमृतसर कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष बनना भी कोई आसान कार्य नहीं था। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे निर्भीक योद्धा ने उस पद का भार ग्रहण किया और अत्यन्त योग्यता के साथ उसे सम्पादित भी किया।

महात्मा गांधी स्वामी जी को अपना दाहिना हाथ समझते थे। स्वामी जी ने कांग्रेस में ऐसे नेताओं का साथ नहीं दिया जो तुष्टिकरण की नीति अपनाकर हिन्दुओं को निबल बनाना ही अपना कर्त्तव्य मानते थे। स्वामी श्रद्धानन्द की भावना आर्यत्व की सुदृढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित थी। हिन्दु-मुस्लिम एकता के वे पक्षधर थे पर इस एकता को वे एकांगी नहीं उभयांगी बनाना चाहते थे। उनका निश्चित मत था कि सहयोग के हाथ दोनों ओर से बढ़ने चाहिये अन्यथा वह सहयोग स्थिर नहीं रहेगा। भारतीय इतिहास का वह दिन भी गौरवशाली बन गया है जब जामा मस्जिद की व्यासपीठ पर खड़े होकर स्वामी जी ने महानाद किया और हिन्दु-मुस्लिम एकता पर धर्म का ठप्पा लगाया। उन्होंने इस मंच से शहीदों के लिये मंगल-कामना के साथ देशभक्ति और धर्म के अटूट सम्बन्धों की घोषणा की।

सन् १९२२ में सारा देश सिक्खों के सत्याग्रह के नाद से गूँज उठा। निहत्थे अकाली वीरों पर लाठियों के क्रूर प्रहार का शब्द देश के एक कौने से दूसरे कौने तक सुनाई दिया। स्वामी जी दिल्ली में थे। अकाली वीरों के दुःख में हिस्सेदार बनने के लिये वे अमृतसर पहुँचे और अकालतख्त के पास खड़े होकर सिक्खों को सन्देश सुनाया कि आप लोगों के धर्म-संग्राम में हिन्दू आपके साथ हैं। १० सितम्बर १९२२ को स्वामी जी बन्दी बना लिये गये। परन्तु जब पंजाब के अखबारों ने शोर मचाया तो २६ दिसम्बर को स्वामी जी रिहा कर दिये गये। जेल से छूटकर स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी में आकर कुछ दिन विश्राम किया।

आगरा में राजपूत सभा की ओर से मुसलमान बने हुये जाटों तथा गूजरों को बिरादरी में वापिस लेने पर विचार चल रहा था। स्वामी जी तत्काल आगरा जा पहुँचे। काफी विचार-विमर्श के पश्चात् मूलों तथा मलकानों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि के लिये हिन्दू शुद्धि सभा की स्थापना की गयी। स्वामी श्रद्धानन्द जी उसके सभापति बनाये गये। स्वामी जी द्वारा चलाये गये शुद्धि आन्दोलन के कारण कुछ लोग उन पर संकीर्णता का आरोप लगाते हैं। किन्तु यह विचार दोषपूर्ण और भ्रामक है। भारतीय समाज को एक सूत्र में बाँधने का यह प्रबल प्रयास था। भ्रम, भूल और शोषण के फलस्वरूप अपने भाई हिन्दू धर्म से बाहर हो गये थे, स्नेह और प्यार से उन्हें पुनः अपने में वापस लेना किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी। हिन्दू जाति की पुरातन पाचन शक्ति को पुनर्जीवित करने का यह महानतम प्रयास था। दलितोद्धार और शुद्धि आन्दोलन में स्वामी जी ने जो भूमिका अदा की वह स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

भारत को सशक्त और समृद्धशाली बनाने के लिये स्वामी जी स्त्री-शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व देते थे। जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की स्थापना में आपका विशेष हाथ था। बालकों के लिये गुरुकुल कांगड़ी बन जाने पर आप का बराबर यह ध्यान रहा कि कन्याओं के लिये गुरुकुल की स्थापना की जाये। ९ नवम्बर १९२३ को दिल्ली की दरियागंज, कोठी नम्बर ४ में कन्या गुरुकुल का प्रारम्भोत्सव हुआ। कुछ समय पश्चात् कन्या गुरुकुल को देहरादून ले जाया गया, जहाँ आज भी यह अत्यन्त ही कुशलता के साथ चलाया जा रहा है।

शुद्धि आन्दोलन मुसलमानों को बेतरह अखरा। एक धार्मिक मदान्ध ने उनकी हस्ती को मिटा देना चाहा, परन्तु स्वामी जी चिरकाल के लिये अमर हो गये। इस प्रकार तपस्वी श्रद्धानन्द ने धर्म पर अपना शरीर बलिदान किया। वह जैसा अन्त चाहते थे मृत्यु ने उन्हें वैसा ही दिया। भाग्य का चक्र कैसा है कि एक मुसलमान डॉ० अन्सारी जीवन भर स्वामी जी की रक्षा करता रहा और दूसरे मुसलमान अब्दुल रशीद ने उनके प्राण ले लिये।

स्वामी श्रद्धानन्द युग-पुरुष थे। साहस और त्याग के जीते–जागते उदाहरण थे। भारत की सच्ची राष्ट्रीयता के महानतम आदर्श थे, और आधुनिक नव-जागरण के प्रकाश स्तम्भ थे। स्वामी जी का भौतिक शरीर आज हमारे मध्य नहीं है, किन्तु उनकी दैदीप्तमान स्मृति हमारे अन्दर अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए नवचेतना का संचार करती रहेगी।

किसी कवि ने कहा है :—

स्वामी श्रद्धानन्द,
वे लक्ष्य पर पहुँचे,
उन्होंने सब कुछ पाया,
वह अपना काम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें मेरी श्रद्धांजलि ।
प्रत्येक जीवन का कोई चिह्न होता है
उनके जीवन का था चिन्ह सेवा ।
उनकी स्मृति नये जोवन को जगा देवे और
राष्ट्र के युवकों में रूह फूँक देवे ।
दीन-दलितों की इस सेवा के लिये जो धर्म और
आज़ादी दोनों का दिल है हम से अलग होकर भी मरे नहीं ।
वे तो अब भो बोल रहे हैं ।
और उन सबको जिन्हें मैं सुना सकता हूं,
उस शहीद का सन्देश सुनाना ।
चाहता हूं जो इस क्षण मुझे याद आ रहा हैं ।
यह वह सन्देश है,
जिसमें प्राचीन नवीन का अभिनन्दन करता है ।
धन्य है, वह जीवन जो बलि में प्रज्वलित हो ।

—※—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परम्परागत भारतीय काव्य-चिन्तन और आचार्य शुक्ल की लोकमंगल सम्बन्धी अवधारणा"

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय

भारतीय परम्परा में 'आचार्य' उसे कहा जाता है, जो परम्परा-प्रतिष्ठ मूल प्रामाणिक वाङ्मय के साक्ष्य पर एक स्वतंत्र 'प्रस्थान' निर्मित करता है। यह नया 'प्रस्थान' बदलते हुए देश-काल और आत्मगत सम्भावनाओं के लिए तड़पती हुई लोक-चेतना की नाड़ी देखकर निर्मित किया जाता है। कवि भाव-मार्ग से लोक-हृदय से एक होकर उसे वह पहचानता है और आचार्य बोध-मार्ग से। कवि के लिए लोक-हृदय की पहचान और आचार्य के लिए लोक-चेतना की पहचान आवश्यक है। परम्परा लोक-हृदय और लोक-चेतना की व्याप्ति अति-प्राकृत स्तर तक मानती है—जबकि शुक्लजी अतिप्राकृत या अव्यक्त ब्रह्म की सत्ता मानते हुए भी उसकी व्याप्ति को प्राकृत स्तर से ऊपर नहीं ले जाते। परम्परा मानव-भाव से निहित ऊर्ध्वतम सम्भावना को चरितार्थ करने के लिए परमार्थ-दर्शन, व्यवहार-दर्शन और काव्य-दर्शन निर्मित करती है और आचार्य शुक्ल ने भी—परन्तु परम्परा या पारम्परिक चिन्तन जहाँ उन सबको अन्ततः **अतिप्राकृत मानव-भाव से जोड़ता है** वहां शुक्लजी **प्राकृत मानव-भाव** से। पारम्परिक चिन्तन अतिप्राकृत सम्भावना या गन्तव्य सिद्धि के लिए आविष्कृत कर्म-ज्ञान और उपासना का उपयोग करता है वहां शुक्लजी इन साधनों की सार्थकता प्राकृत मानवभाव की चरितार्थता में मानते हैं। पारम्परिक चिन्तन अतिप्राकृत मानवभाव की पहचान या उपलब्धि के मुख्यतः दो ही मार्ग बताता है—ज्ञानमार्ग और भक्ति-मार्ग। ज्ञानमार्ग रूक्ष स्वभाव वाले साधकों का मार्ग है—जहां वासना का दमन किया जाता है—इसे सामान्यतः निवृत्ति मार्ग माना जाता है। हीन-यानी बौद्ध, जैन और शंकर का यही मार्ग है जबकि मध्यकालीन वैष्णव या पूर्ववर्ती सात्वत अथवा भागवत मार्ग भक्ति मार्ग है—यह मार्ग द्रवशील चेतस् साधकों का है। यहां वासना का दमन नहीं—शोधन होता है। कर्म या धर्म की उपयोगिता उभयत्र है। अभ्युदय तथा निःश्रेयस् की सिद्धि के लिए अपेक्षित वृत्ति या व्यवस्था (विधिनिषेधमयी) ही धर्म है। पारम्परिक चिन्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस 'धर्म' का सम्बन्ध इस लोक के साथ-साथ 'परलोक और अध्यात्म'—दोनों से जोड़ता है। शुक्लजी की दृष्टि में धर्म का परलोक और अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'धर्म' सामाजिक विकास के सन्दर्भ में उद्भूत और विकसित हुआ है। 'सूरदास' की भूमिका में वे अत्यन्त अभिनिवेश के साथ अपने पक्ष की प्रतिष्ठा प्राचीन वाङ्मय के साक्ष्य पर करते हैं। उनकी दृष्टि में उनके देशकाल सम्बन्धी परितिष्ठित मान्यता यह है कि **मानवता ही ईश्वर है और समाज-सेवा ही धर्म।** इसलिए युगानुरूप बदलती हुई लोकचेतना को दृष्टिगत कर शुक्लजी ने प्राचीन भारतीय वाङ्मय के ही साक्ष्य पर अपना स्वतन्त्र प्रस्थान निर्धारित किया है। इस सन्दर्भ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू का एक वक्तव्य अत्यन्त प्रासंगिक है—

"The modern mind, that is to say the better type of the modern mind, is practical and pragmatic ethical and social altruistic and humanitarian. It is governed by a practical idealism for social betterment. The ideals which move it represent the spirit of the age, the zeitgist—the Yugdharma. It had discarded to a large extent the philosophic approach of the ancients, their search for ultimate reality, as well as the devotionalism and mysticism of the medieval period. Humanity is its God and social service its religion. This conception may be incomplete, as the mind of every age has been limited by its environment and every age has considered some partial truth as the key of all truth......"

अर्थात् आधुनिक मस्तिष्क— मतलब आधुनिक मस्तिष्क का अपेक्षाकृत उच्चतर रूप--व्यावहारिक, यथार्थ का पक्षधर, नैतिक, सामाजिक, परार्थी और मानवतावादी है। लोकमंगल के निमित्त वह व्यवहारोपयोगी आदर्शों से परिचालित होता है। इसे परिचालित करने वाले आदर्श युगचेतना या युगधर्म का प्रतिनिधान करते हैं। इसकी दूसरी पहचान यह भी है कि यह निरपेक्ष सत्ता के प्रति दार्शनिक छानबीन, पुरातन अन्य सम्बद्ध मान्यताओं, मध्यकालीन रहस्यवाद और अतिप्राकृत तत्व-परायण भक्ति-भाव को बहुत दूर फेंक देता है। मानवता ही उसका आराध्य है और समाजसेवा ही धर्म। हो सकता है कि आधुनिक मस्तिष्क की यह अवधारणा अधूरी हो— क्योंकि प्रत्येक युग का मस्तिष्क अपने युग के परिवेश से नियन्त्रित होता है— फिर भी अंतिम सत्य से जुड़ने की सम्भावना वाले किसी न किसी व्यवहार्य सत्य की खोज करता ही है। '४२ में लिखा गया नेहरू जी का यह मंतव्य शुक्लजी पर चौकोर लागू होता है— जबकि शुक्लजी '४१ में ही दिवंगत हो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लजी द्वारा प्रतिष्ठापित प्रस्थान का गंतव्य या केन्द्रबिन्दु है — लोकमगल। पारम्परिक चिन्तन में 'लोक' की व्याप्ति इहलोक के साथ 'परलोक' तक है और भीतर की ओर चलें तो मनोमय कोश से भी बहुत आगे— पर शुक्लजी का 'लोक' केवल इहलोक है और भोतर की ओर मनोमय कोश तक। उनके लोक की यही व्याप्ति है— यही अव्यक्त का 'व्यक्त' रूप है, जो उसी की भाँति अनन्त और प्रवाह नित्य है। यह अवश्य है कि अव्यक्त अपने को 'सत्' रूप में व्यक्त करने में 'असत्' सापेक्ष हो जाता है। जैसे—'राम' का प्रकाशन 'रावण' सापेक्ष है। शुक्लजी के अनुसार व्यक्त जगत् इन्हीं विरुद्धों के ताने-बाने से बना है। उन्होंने कहा है— 'सत्' और असत्, भले और बुरे— दोनों के मेल का नाम संसार है। प्रकृति के तीनों गुणों— सत्व, रजस् तथा तमस् की अभिव्यक्ति जब तक अलग-अलग है— तभी तक उसका नाम जगत् या संसार है। अपनी अवधारणा की पुष्टि में गोस्वामी जी को उद्धृत करते हैं—

सुगुन छीर अवगुन जल ताता।
मिलइ रचइ परपंच विधाता ॥

अव्यक्त और विश्वात्मा की बात बार-बार करके भी मानवीय सम्भावना की चरम परिणति व्यवहार जगत् के सामंजस्य में ही नियन्त्रित कर देना एक असंगति जैसा भी प्रतीत होता है— इसीलिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी बराबर यही कहते रहे कि शुक्लजी के पीछे न तो पौरस्त्य और पाश्चात्य दर्शन की संगत पीठिका है और न ही ठोस ऐतिहासिक आधार। यद्यपि आगे चलकर वाजपेयीजी यह भी स्वीकार करते हैं—साम्प्रदायिक और परम्परागत विवेचन पद्धति से छुटकारा पाने और एक व्यापक मानव दृष्टिकोण का संस्थापन करने में शुक्लजी समर्थ हुए हैं। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व से अभिभूत आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जिन्होंने उनकी चिन्तमणि को 'मंजूषा' में संजोकर रखा है, कहते हैं—'वरं विरोधोऽपि समम् महात्मभिः' की नीति से कुछ कहना दूसरी बात है और शुक्लजी की धारणा को समझने और पूरा-पूरा हृदयंगम कर लेने के आनन्तर उसका खण्डन करना दूसरी बात। फलतः वे तो कहते हैं—'उन्होंने पारम्परिक विचारधारा को पकड़ से अपना विच्छेद नहीं होने दिया।' तीसरी ओर डा० रामविलास शर्मा का पक्ष है— 'उन्होंने हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना को एक ठोस दार्शनिक आधार दिया।' डा० शर्मा का पक्ष है कि यद्यपि वे सुसंगत रूप से भौतिकवादी नहीं हैं, तथापि वे विकासवाद के समर्थक हैं और उनके साहित्यिक दृष्टिकोण को ठीक-ठीक समझने के लिए उन्हें वस्तुवादी ही मानना चाहिए क्योंकि वे जगत् को मिथ्या नहीं कहते।

उनके दार्शनिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अब तक कुल छह मत मिलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं— (क) वस्तुवादी (ख) आत्मवादी (ग) विधेयवादी (घ) स्पिनोज़ा का विश्वेश्वरैक्यवादी (ङ) शुद्धाद्वैतवादी (च) बुद्धिवादी ।

पहला मत डॉ० रामविलास शर्मा का, दूसरा पं० गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश का, तीसरा नलिन विलोचन शर्मा के नाम से डॉ० रामचन्द्र तिवारी द्वारा प्रस्तावित, चौथा पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का, पाँचवां श्री रंजन सूरिदेव का और छठा स्वयं डॉ० रामचन्द्र तिवारी का । मेरा पक्ष यह है कि जब शुक्लजी अभेद दृष्टि को ही तत्व-दृष्टि कहते हैं— तब वे अद्वैतवादो हैं । सवाल यह है कि वह अद्वय तत्व क्या है ? पदार्थ या चेतन ? स्पष्ट है कि जो व्यक्ति अनेकता ब्रह्म अव्यक्त और विश्वात्मा की बात करता है— वह परार्थाद्वैतवादी कैसे हो सकता है ? चिद्द्वैतवादी ही हो सकता है । चिद्द्वैतवादी भी शंकर सम्मत है या आगम-सम्मत ? जगत् को सत्य या अव्यक्त की अभिव्यक्ति मानने वाला, उसे प्रवाहनित्य सिद्ध करने वाला व्यक्ति जगत् को मिथ्या मानने वाला शंकर-सम्मत अद्वैती हो नहीं सकता । अब बचा-आगम सम्मत द्वयात्मक अद्वयवाद । इसी से शुक्लजी का सम्वाद हो सकता है । स्पिनोजा के विश्वेश्वरैक्यवाद की सम्भावना इसलिए निरस्त हो जाती है कि वहां सत्व रजस्तमोमयी प्रकृति की सत्ता नहीं जिसकी शुक्लजी बार-बार चर्चा करते हैं । विधेयवाद और बुद्धिवाद तो पद्धति मात्र हैं । इहलोक में ही भक्ति की चरितार्थता मानने वाला 'लीला-लोकवादी' शुद्धाद्वैती कैसे हो सकता है ? यद्यपि आगम-सम्मत द्वयात्मकाद्वयवाद से संवाद रखने के कारण शुद्धाद्वैतवादी बिन्दुओं का पर्याप्त आभास वहां विद्यमान है।

द्वयात्मक अद्वयवाद आकर्षण— अपसरणात्मक शक्ति की सत्ता मूल सत्ता में मानता है— फलतः गत्यात्मक जगत् की अवधारणा की भी संगति बैठ जाती है । सृष्टि क्रम में वही शक्ति त्रिगुणात्मिका हो जाती है— जिसके नेतृत्व में उनका लोकमंगलवाद ठीक-ठीक व्याख्यात होता है । वे मानते हैं कि जगत् भिन्न गुणात्मक है और रहेगा— अतः लोकमंगल का अर्थ है— सत्व के अनुशासन में सक्रिय रजस् एवं तमस् की स्थिति । शुक्लजी कहते हैं— "जबकि अव्यक्तावस्था से छूटी हुई प्रकृति के व्यक्त स्वरूप जगत् में आदि से अन्त तक सत्व, रजस् और तमस् — तीनों गुण रहेंगे— तब समष्टि रूप **लोक के बीच मंगल** का विधान करने वाला ब्रह्म के आनन्द कला के प्रकाश की यही पद्धति हो सकती है कि तमोगुण और रजोगुण दोनों सत्व गुण के अधीन होकर इशारे पर काम करें । इस दशा में किसी ओर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार काम करने पर भी समष्टि रूप में और सब ओर से वे सत्वगुण के लक्ष्य की ही पूर्ति करेंगे । सत्व गुण के इस शासन में कठोरता, उग्रता और प्रचण्डता भी सात्विक तेज के रूप में भासित होगी । इसी से हमारे यहाँ अवतार रूप में भगवान की मूर्ति एक ओर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वज्रादपि कठोर' और दूसरी ओर 'कुसुमादपि मृदु' रखी गई है—

'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि'

लोकमंगल की यह अवधारणा पदार्थवादी दृष्टि से किस तरह सम्भव हो सकेगी ? कहा जा सकता है कि यदि वे आत्मवादी दार्शनिक हैं तो रहस्यवाद का विरोध क्यों ? धर्म का परलोक और अध्यात्म से सम्बन्ध क्यों नहीं ? क्या विकासवादी दृष्टि आत्मवाद के अनुरूप है ? क्या उनका ज्ञानशास्त्र आत्मवाद के अनुरूप है ? क्या उनका कर्म, ज्ञान और उपासना – अध्यात्म में पर्यवसित हैं ? क्या भक्तिरस लीलावादियों की भाँति लोकोत्तर भूमि पर चरितार्थ होता है ? फिर कैसा आत्मवाद ?

पर आत्मवादी भी पूछ सकता है कि जो विकासवादी पद्धति में डारविन के 'योग्यताभाव शेष' के सिद्धान्त की जगह स्पेंसर की 'परस्पर साहाय्य की वृत्ति' मानता है और समाजशास्त्रियों के इकरार सिद्धान्त से मतभेद रखकर नगद रक्षक 'करुणा' नाम के भाव के पीछे विश्वात्मा की इच्छा मानता है, रसपयोगी मुक्त हृदय को व्यापक आत्मा का अंग मानता है, काव्य की सिद्धावस्था को ब्रह्म की आनन्दकला का प्रकाश मानता है और उस पर पड़े हुए अधर्म के आवरण को हटाने में साधना का सौन्दर्य देखता है— वह भूतवादी कैसे ?

क्या यह एक दुर्विचार असंगति है – जैसाकि बहुत से लोग मानते हैं ? या कोई संगति लगाई जा सकती है ? मुझे ऐसा लगता है कि शुक्लजी के व्यक्तित्व के दो घटक हैं— एक तो जन्मजात— जो भारतीय संस्कारों से घटित है और दूसरा अर्जित— जो युग-चेतना से नियंत्रित है – फलतः दोनों को टकराहट होती है। अथवा जैसे संगति लगाने के लिए शुक्लजी तुलसी को दो भूमियों पर विभक्त कर देते हैं—परमार्थतः अद्वैतवादी और व्यवहारतः द्वैतवादी — वैसे ही शुक्लजी के दर्शन को भी परमार्थतः 'अव्यक्तवादी' और व्यवहारतः **'व्यक्तवादी'** माना जा सकता है। वे कहते हैं कि 'जगत्' और 'कविता' दोनों ही अभिव्यक्ति हैं— अतः उनका सम्बन्ध 'व्यक्त' से ही है। तात्विक दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जगत् या 'व्यवहार जगत्' का सौन्दर्य ही उनका 'साध्य पक्ष' है— उसी में मानवभाव की चरितार्थता है। उनकी दृष्टि में मानवभाव चेतना का वह विकसित रूप है, जिसमें लोक-रक्षण, पालन और रञ्जन का भाव विश्वात्मा की इच्छा से सम्भावित है। इसी सम्भावना की चरितार्थता ही मुक्ति है— जो इसी शरीर और धरा पर सम्भावित है। इसी के लिए 'लोकधर्म' की व्यवस्था हुई। यह सौन्दर्य या मंगल जिन विरुद्धों का सामंजस्य है— वे 'सत्' और 'असत्' हैं। इनमें से किसी का आत्यन्तिक उच्छेद्य हो नहीं सकता— फलतः इन्हीं के बीच से जो समंजस मार्ग निकलेगा— वह लोकमंगल विधायक होगा।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड के नवीन-प्रकाशित ग्रन्थ "वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त" का विमोचन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया। (चित्र में, आचार्य जी को उत्तरीय तथा ग्रन्थ भेंट करती हुई प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी अन्य उपस्थित आर्य-बन्धुओं के साथ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

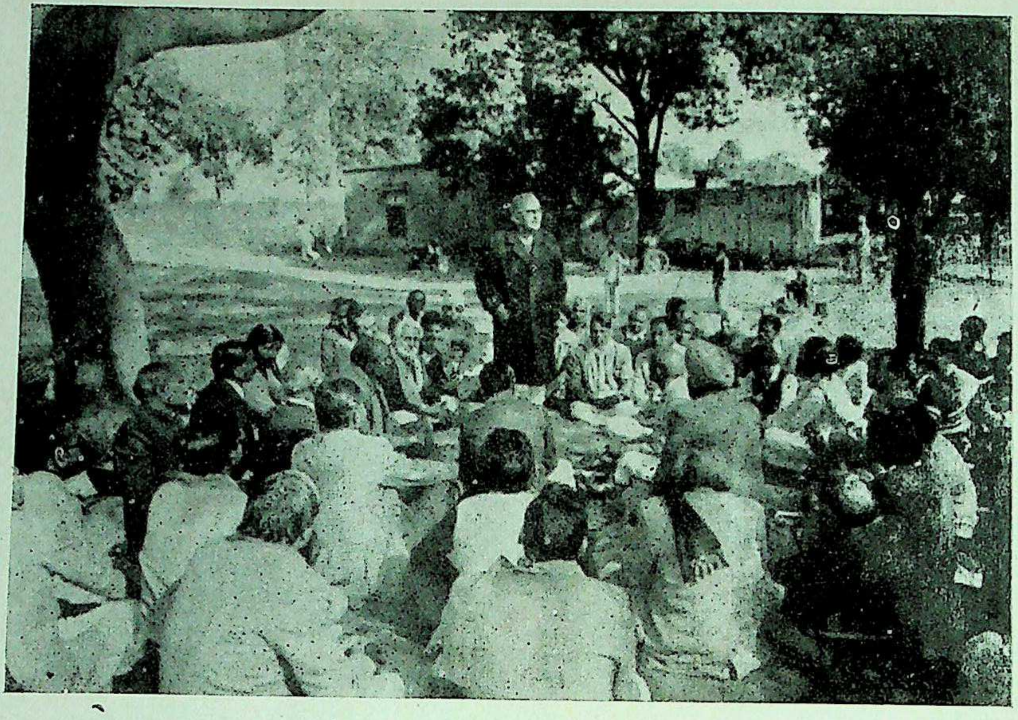

गुरुकुल परिसर में विश्वविद्यालय के शिक्षकेतर कर्मचारियों के नव-निर्माणाधीन आवास-भवन के शिलान्यास पर बोलते हुए कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी। आयोजित यज्ञ में श्री कुलपति, शिक्षक तथा कर्मचारी, विकास की सम्भावनाओं का दर्शन करते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक के विकास में माता-पिता एवं शिक्षकों का योगदान

चन्द्रशेखर त्रिवेदी

व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम एवं सामाजिक पर्यावरण (विशेषत: परिवार एवं पाठशाला) अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक हैं। इनमें से किसका अधिक प्रभाव पड़ता है, यह एक विवादास्पद विषय है। परन्तु बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में माता-पिता एवं आचार्य का अत्यधिक योगदान होता है। परिवार एक प्रारम्भिक पाठशाला के रूप में होता है। परिवार में रहते हुए बालक अपने माता-पिता, भाई-बहनों, गुरुजनों आदि से बहुत कुछ सीखता है। शैशव काल में अच्छे अथवा बुरे जो भी संस्कार बच्चे पर पड़ जाते हैं, वे अमिट होते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् जब मनुष्य को अच्छे माता-पिता एवं आचार्य मिल जाते हैं तभी वह ज्ञानी हो सकता है तथा उसमें सद्गुणों एवं उच्चस्तरीय जीवन-मूल्यों का विकास सम्भव है। यही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त दार्शनिक एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व० डॉ० राधाकृष्णन ने कहा था—— 'Education consists in the conquest of lower impulses by the higher altogether. Education may be summed up in the concept 'morality'। जब तक बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में माता-पिता एवं आचार्य द्वारा अच्छे संस्कार डालने का प्रयत्न नहीं किया जायेगा, नैतिकता एवं मानवजाति को सुशोभित करने वाले अन्य सद्गुण उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि 'As the twig is bent so the tree is inclined to grow'.

प्राणो में कुछ जन्मजात शक्तियाँ होती हैं। जिन्हें हम प्राकृतिक शक्तियाँ कहते हैं। उदाहरणार्थ :- सञ्चयशक्ति, पलायन, युयुत्सा, निवृत्ति, जिज्ञासा, आत्मगौरव, रचनात्मकता आदि।

प्रत्येक प्राणी में जन्म लेने के पश्चात् उसका अनुभव संचित होने लगता है। हम जिस किसी स्थिति में आते हैं हमारे मस्तिष्क पर उसका प्रभाव स्वत: छूट जाता है। प्राणी का दूसरा गुण उसके व्यवहार का सप्रयोजन होना है। उसमें संस्कारों के सञ्चय करने की ही शक्ति नहीं होतो प्रत्युत उसका प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य सप्रयोजन होता है। कोई जीवनीशक्ति अथवा कोई प्रेरणा उसकी ज्ञात अथवा अज्ञात चेतना में बैठी हुई उसका संचालन करती होती है, इसे ही हम मन की 'सप्रयोजन क्रियाशीलता' कहते हैं। इसी आधार पर आधुनिक मनोविज्ञान में विलियम मैक्डूगल ने 'प्रयोजनवाद' की स्थापना की। तत्पश्चात् मानसिक जीवन का तृतीय पहलू 'सम्बन्ध' आता है। चूँकि प्राणी की प्रत्येक क्रिया सप्रयोजन है अतः उसमें सञ्चित संस्कार पृथक् रूप से असम्बद्ध नहीं रह सकते वे एक दूसरे से सम्बद्ध होते रहते हैं। इसी आधार पर प्रत्यय-सिद्धान्त का विकास हुआ। किसी प्रकार का अनुभव कर लेने के पश्चात् प्रत्यय मन में नहीं रहते केवल उनकी स्मृति, उनके संस्कार मन में रह जाते हैं। और यह संस्कार क्रियाशील होते हैं, और जब अनुकूल अथवा तद्रूप स्थिति सामने आती है तो वे स्पष्टतः स्फुरित हो जाते हैं। जैसा कि पर्वतराज पुत्री उमा की शिक्षा के सन्दर्भ में महाकवि कालिदास ने कहा है—

'स्थिरोपदेशामुपदेश काले प्रपेदिरे प्रावतन जन्म विद्या'

इन प्राकृतिक शक्तियों के अतिरिक्त संकेत, अनुकरण, सहानुभूति आदि कुछ सामान्य प्रवृतियाँ भी व्यक्ति में पाई जाती हैं। यदि इन सभी शक्तियों एवं सामान्य प्रवृतियों को यथासमय उचित ढंग से विकसित किया जाय तो समन्वित एवं संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि माता, पिता एवं शिक्षक बालक के निर्माण में इन सबका किस प्रकार उपयोग करें। जैसा कि कहा गया है बच्चे में सञ्चय शक्ति होती है। माता, पिता एवं शिक्षक को चाहिये कि उसे अच्छे विचार, प्रेरणा-दायक सूक्तियाँ, अच्छी पुस्तकें पढ़ने एवं एकत्र करने के लिए प्रेरित करें। वस्तुतः बालक की प्राकृतिक शक्तियाँ एवं सामान्य प्रवृतियाँ शिक्षक का मूलधन हैं। यह ही मानव-व्यवहार का स्रोत हैं। इन्हीं के आधार पर गुरुजन बालक के व्यवहार में वाञ्छित परिवर्तन ला सकते हैं, उसे अच्छा नागरिक बना सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि इन प्राकृतिक शक्तियों एवं सामान्य प्रवृतियों के उदित होने का कोई एक समय नहीं है। यह विभिन्न काल में प्रकट होती हैं। इनका अधिकतम लाभ उठाने के लिए प्राबल्यकाल का ज्ञान माता, पिता व शिक्षक को होना चाहिये। शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में बालक की अनुकरणात्मक प्रवृत्ति अत्यन्त बलवती होती है। ऐसी स्थिति में माता- पिता एवं आचार्य का कर्त्तव्य है कि वे बालक के लिए आदर्श हों क्योंकि जैसा उनका आचरण होगा, बालक भी उसका अनुकरण करेंगे।

क्योंकि 'If gold ruste what shall iron do' अर्थात् यदि स्वर्ण ही दूषित है तो ताम्र एवं लोह का क्या कहना। यदि माता, पिता एवं आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ही आचरण निन्दनीय है तो बालक का आचरण निन्दनीय होगा ही। अपने दैनिक जीवन में हम अनुभव करते हैं कि माता-पिता घर में उपस्थित होते हुए भी यदा-कदा बालक से कहलवा देते हैं 'कह दो पिताजी घर में नहीं हैं'। यह बात अपने में भले ही उतनी महत्वपूर्ण न मानी जाए परन्तु इसका बहुत ही बुरा प्रभाव बालक पर पड़ता है। वह धीरे-धीरे इसी प्रकार असत्य बोलना सीख जाता है। वयस्क होने पर वह ऐसे माता-पिता और शिक्षक को हेय दृष्टि से देखता है। अतएव बालक के साथ बहुत ही सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिये जिससे उसमें किसी प्रकार के दुर्गुण न उत्पन्न हों।

इसी प्रकार जिज्ञासा बहुत ही अच्छी प्रवृत्ति है। परन्तु देखा जाता है कि माता-पिता आदि बालक द्वारा किसी बात की जानकारी किये जाने पर उसे निर्दयतापूर्वक, अज्ञानतावश डांट देते हैं, फलतः वह चुप हो जाता है। ऐसा करने से उसकी जिज्ञासा नष्ट हो जाती है और उसकी ज्ञान वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। समन्वित एवं संतुलित व्यक्तित्व के विकास हेतु पाश्चात्य देशों में तो राजकीय स्तर पर यौन-शिक्षा तक का प्रावधान है। यथासम्भव बालक को बहुत सावधानीपूर्वक सामाजिक मान्यताप्राप्त ढ़ंग से उसकी ऐसी जिज्ञासा का समाधान करना चाहिये। उसे रूपांतरित कर देना चाहिये। इन प्राकृतिक शक्तियों एवं सामान्य प्रवृत्तियों को चरित्र-निर्माण का आधार बनाया जाना चाहिये। बालक में अच्छी आदतें डालने के लिए इनका प्रयोग किया जाना चाहिए। अच्छी आदतों का जीवन में बड़ा महत्व है। जेम्स ने तो चरित्र को विशेष प्रकार को आदतों का समूह बताया है।

बच्चे में संकेतग्रहण योग्यता उसकी सामान्य प्रवृत्ति है। यदि बालक को माता-पिता एवं शिक्षक द्वारा अविवेकपूर्ण ढग से अधिक सुझाव दिये जाते हैं तो उसकी स्वयं की रचनात्मक शक्ति का ह्रास हो जाएगा। सुझाव-संकेत बालक को मार्गदर्शन अथवा निर्देशन के रूप में होने चाहिये, इनके आधार पर वह स्वयं अपनी समस्या का समाधान करें तब तो ठीक है अन्यथा उसकी सम्पूर्ण रचनात्मक शक्ति नष्ट हो जाएगी। प्रायः देखा गया है कि लड़कों में युयुत्सा की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। परस्पर लड़ाई-झगड़ा करना उनका स्वभाव होता है। माता-पिता, शिक्षक एवं अन्य गुरुजनों को चाहिये उनकी इस प्रवृत्ति को रूपांतरित कर दें। अन्यथा ऐसी प्रवृत्ति वाले लड़के भविष्य में अपना समायोजन सपाज में नहीं कर पाते। यदि कोई बलवान् लड़का किसी निर्बल को सताता है तो उसको इससे विरत करने के लिए शिक्षक को चाहिये कि निर्बल छात्रों की रक्षा का दायित्व उसे सौप दें।

माता-पिता एवं शिक्षकों को चाहिये कि बच्चों में सहानुभूति की भावना जागृत करें। यह तभी सम्भव है जब वे स्वयं बच्चों के साथ सहानुभूतिपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार करें, उनके प्रति प्यार प्रदर्शित करें। हमारे समाज में अधिकतर बालकों को शैशवावस्था में माता का दुग्ध पीने को नहीं मिल पाता । अनुसंधानों के आधार पर पाया गया है कि ऐसे बालक अपने भावी जीवन में मद्यपान करने लगते हैं। यह प्रवृत्ति हमारे समाज में पाश्चात्य देशों से आई है। परन्तु अब शनैः-शनैः वहां पर भी बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए मां का दूध आवश्यक माना जाने लगा है। अतः जहाँ तक हो सके बच्चों के प्रति दया, प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिये।

रॉबिन्सन, प्रेसी, हॉरक्स, गेट्स, सोरेन्सन, स्किनर आदि शिक्षा-शास्त्रियों का सामान्य मत है कि माता-पिता के द्वारा बालक का अत्यधिक प्यार अथवा तिरस्कार किए जाने पर उसमें क्रमशः असुरक्षा की भावना एवं चिड़चिड़ापन जैसी बातें उत्पन्न हो जाती हैं। अतएव बच्चे को अत्यधिक प्यार करना या उसका तिरस्कार करना दोनों ही हानिकर हैं। देखा जाता है कि जब बालक अत्यधिक सुन्दर अथवा बुद्धिमान होता है (ii) माता-पिता की एकमात्र संतान होता है (iii) माता-पिता की संतान अधिकतर जीवित नहीं रही (iv) माता-पिता वयोवृद्ध हैं अथवा (v) घर में पर्याप्त धन है, तो ऐसी स्थिति में वह परिवार के लोगों की आँखों का तारा बन जाता है। अति प्यार के कारण उसमें असुरक्षा की भावना बढ़ जाती है वह आत्मनिर्भर नहीं रह पाता। गेट्स के अनुसार हैरी नामक व्यक्ति ५५ वर्ष की आयु में अपनी माँ की मृत्यु हो जाने पर अपने को अत्यन्त असुरक्षित एवं असहाय समझता था क्योंकि उसकी माँ उसको इस आयु में भी प्यारवश हाथ से खाना खिलाती, पंखा झलती, उसे एक घंटा खेलने के पश्चात् दो घन्टे विश्राम के लिए विवश करती, स्वयं पचहत्तर वर्ष की होते हुए उसके हाथ व पैर दबाती और उसकी क्लान्ति दूर करने का प्रयत्न करती। उसके इस प्यार से हैरी की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई। माँ की मृत्यु के पश्चात् उसे जीवनयापन करना कठिन हो गया। अत्यधिक प्यार के यह दुष्परिणाम हुए। अतएव माता-पिता आदि को इस विषय में बहुत ही सावधान रहना चाहिए। हमारी संस्कृति में तो कहा गया है :—

लाड़येत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रमित्रमिवाचरेत् ।।

इसी प्रकार जब बालक कुरूप होता है (ii) बुद्धिहीन होता है (iii) अधिक भाई-बहिन होते हैं (iv) परिवार में निर्धनता होती है तब माता-पिता द्वारा उसका तिरस्कार किया जाता है। उसकी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। फलतः उसमें चिड़चिड़ापन आ जाता है। उसमें नाना प्रकार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीन भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। बच्चे के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु यह आवश्यक है कि माता-पिता एवं आचार्यगण उच्चकोटि का आदर्श बच्चों के सामने उपस्थित करें। बच्चों की क्षमताओं, शक्तियों, आवश्यकताओं आदि को भली प्रकार समझें । तभी अच्छे और संतुलित व्यक्तित्व के नागरिक देश में उत्पन्न किए जा सकेंगे।

मनोविज्ञान–विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

— ※ —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छान्दोग्योपनिषद् का महत्व

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

उपनिषत् साहित्य में छान्दोग्यापनिषत् का अपना विशेष स्थान है। प्रामाणिक एवं प्राचीन मानी जाने वाली उपनिषदों में इसको प्रथम श्रेणी में रखा जाता है, क्योंकि यह उपनिषदों में अपनी गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान प्रतिपादन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़ एवं प्रामाणिक मानी जाती है। इसमें अनूठी शैली से उद्गोथ, साम, एकसूत्रता इत्यादि आध्यात्मिक तथ्यों को जिस विशेषता के साथ समझाया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

यह उपनिषद् सामवेद से सम्बन्ध रखती है। 'छन्दांसि गायन्तीति छन्दोगाः, तेषमिमुपनिषद्' छन्द नाम है सामवेद का, उसको जो गाते हैं, वे छन्दोग कहलाते हैं। उनकी जो उपनिषद् हैं वह छान्दोग्य कहलाती है। इस उपनिषद् में सामोपासनाओं की रीति बतलाई गई है। यद्यपि वैदिक परिपाटी के विलुप्त हो जाने से आजकल उनका मुख्य तात्पर्य समझना दुर्बोध हो गया है, तथापि इस उपनिषद् का समाहित होकर मनन करने से हम इतना तो जान ही सकते हैं कि हमारे पूर्वज किस प्रकार व्यष्टि से समष्टि और समष्टि से व्यष्टि का दर्शन करते थे। वे जहाँ संसार की प्रत्येक वस्तु में उस परमेश्वर की सत्ता और महिमा को निहारते थे, वहाँ इस सकल ब्रह्माण्ड को भी उसमें ही ओत-प्रोत जानते थे।

इस उपनिषद् में कुल आठ प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रथम पाँच प्रपाठकों में प्रधानतया उपासनाओं का वर्णन है और अन्तिम तीन प्रपाठकों में ज्ञान का। इस उपासना और ज्ञान जैसे दोनों गम्भीर विषयों को सम्यक् प्रकार से, अधिकारी की योग्यता के अनुसार, हृदयंगम कराने के लिए स्थान-स्थान पर आख्यायिकाएं एवं लोक-व्यवहार से निदर्शन भी किये गये हैं। इसके स्वाध्याय से केवल आध्यात्मिक रहस्य ही खुलते हों ऐसी बात नहीं, लोक में आपद्धर्म क्या है और इसका समाधान कैसे करना चाहिये—यह शिक्षा भी हमें इससे मिलती है। जैसे प्रथम प्रपाठक में कर्मकाण्ड में अत्यन्त मर्मज्ञ उषस्तिचाक्रायण अकाल पड़ने पर, प्राण संकट उपस्थित होने पर, इभ्यग्राम में हाथीवान के झूठे 'उड़द' खा लेना भी धर्म समझते हैं जबकि प्यास लगने पर भी वे उनका झूठा जल स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते, क्योंकि जल बहुतायत में प्राप्त होने से तद्विषय में मर्यादा रखी जा सकती है ।[1]

इस उपनिषद् की सत्यकाम जाबाल की कथा भी अपने में कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस कथा में जाबाल और सत्यकाम की सत्यपरायण में सत्य के अद्भुत प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति है । सत्यकाम की सत्यपरायणता ने हारिद्रुमत जैसे आचार्य को अपनी ओर ऐसा आकृष्ट कर लिया कि उसने उसे इस सत्य प्रेम के आधार पर ही ब्राह्मण कोटि में घोषित कर दिया ।

सप्तम अध्याय में सनत्कुमार एवं नारद का संवाद भी अत्यन्त विश्रुत वृतान्त है जो क्रमशः शब्दवित् से आत्मवित् होने का दिव्य-पथ है। इसी प्रकार अष्टमाध्याय में इन्द्रविरोचन का प्रजापति के समीप आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए जाना और प्रजापति का शनैः-शनैः उन्हें आत्म सम्बन्धी ज्ञान कराना साधकों को अध्यात्म मार्ग में निष्ठा एवं धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहने की प्रेरणा देता है ।

इस उपनिषद् के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' एवं 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य ऐसे हैं जिन पर शंकराचार्य ने अपने अद्वैत सिद्धान्तों को खड़ा किया है। यहाँ तक कि इसमें सब तरह से साधना एवं अनुभूति सम्बन्धी ज्ञान होने पर भी यह उपनिषद् अपने भाष्यकारों, व्याख्याकारों एवं टीकाकारों आदि से एक महान दर्शन का रूप धारण कर गई है ।

जीवन का मुख्य लक्ष्य परमेश्वर की प्राप्ति है जिसके लिए जगत्, जीव एवं ब्रह्म का विवेक आवश्यक है। इन तीनों का विवेक करा कर मानव को अपने चरमोद्देश्य के प्रति अग्रसर करना ही इस उपनिषद् का प्रधान कार्य है। अध्यात्म मार्ग में इस उपनिषद् का महत्वपूर्ण योगदान होने से इसका इस क्षेत्र में अपना विशेष स्थान है ।

आचार्य एवं उप-कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

— ❀ —

१- न वा अजीविष्यमिमानखादन्..................कामो मे उदयमानम् ।।छां० १-१०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : व्यक्ति और आलोचक

भगवानदेव पाण्डेय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सं० १६४१ की आश्विन पूर्णिमा को गोरखपुर जिले के अगोना नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता गाना के मिश्रवंश की थीं। इनके पिता का नाम पं० चन्द्रवली था, जो प्रबन्धक कानूनगो के पद पर कार्यरत थे। शुक्ल जी की शिक्षा का श्रीगणेश हमीरपुर जिले को राठ तहसील में हुआ। ये यहाँ के वर्नाक्यूलर स्कूल में भरती हुए। उस समय हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था केवल छठीं,सातवीं कक्षा तक होती थी पर, पिता के निर्देशानुसार ये उक्त कक्षाओं तक भी हिन्दी की शिक्षा प्राप्त न कर सके। इन्होंने आठवीं तक उर्दू, फारसी तथा नवीं में ड्राइंग पढ़ा।

लेकिन हिन्दी-प्रेम शुक्ल जी में बाल्यकाल से ही था, जिससे ये पिता के आदेश का उल्लंघन करके पंडित गंगाप्रसाद से हिन्दी पढ़ते थे। नौ वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। राठ से शुक्ल जी के पिता मिर्जापुर में सदर कानूनगो होकर आ गये। शुक्ल जी मिर्जापुर के जुबिली स्कूल में उर्दू के माध्यम से अंग्रेजी पढ़ने लगे और सं० १६५५ में मिडिल पास किया। शुक्ल जी का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में काशी के पं० रामफल ज्योतिषी की कन्या से हो गया। जब ये नवीं कक्षा में थे तभी इनकी मातामही का स्वर्गवास हो गया, जिन पर शुक्ल जी की अतीव श्रद्धा थी। शुक्ल जी के व्यक्तित्व में गाम्भीर्य की निहित का एक कारण इनकी मातामही के स्वर्गवास का इन पर प्रभाव भी है। उनकी मृत्यु ने इन पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि ये क्रमशः गम्भीर होते गए। मातामही की मृत्यु के पश्चात् तो बहुत दिनों तक ये हँसी-प्रसंग पर भी नहीं हँसते थे।

शुक्ल जी ने लन्दन मिशन स्कूल से स्कूल फाईनल की परीक्षा सं० १६५८ में उत्तीर्ण की तथा आगे पढ़ने के लक्ष्य से प्रयाग की कायस्थ पाठशाला में एफ० ए० में नाम लिखा गया। उस समय एफ० ए० में उच्च गणित की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। शुक्ल जी गणित में बहुत कमजोर थे जिससे कि एक माह के पश्चात् इन्होंने पाठशाला छोड़ दी। गणित के अतिरिक्त सभी विषयों में शुक्ल जी का स्थान हमेशा अपनी कक्षा में प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रहता था। अन्त में ये 'प्लीडरशिप' (वकालत) पढ़ने प्रयाग गये, पर इसमें इन्हें सफलता न प्राप्त हो सकी।

शुक्ल जी को शिक्षा-काल में बहुत अधिक अर्थ-संकट का सामना करना पड़ा था, क्योंकि विमाता से इनके सम्बन्ध अच्छे न थे जिससे पिता भी इनसे खिंचे रहते थे और कोई भी आर्थिक सहायता नहीं करते थे। परिणामस्वरूप इनको अपने अध्यवसाय के बल पर ही शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी। अर्थोपार्जन के लिए ये 'आनंदकादंबिनी' में अतिरिक्त समय में काम करते थे। स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री के० एन० बरुआ इनके प्रति बहुत ही कृपालु थे और इन्हें ट्यूशन दिला देते थे। इस प्रकार शुक्ल जी ने शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त करने पर शुक्ल जी ने सरकारी नौकरी की और शीघ्र ही उसे छोड़ी भी। शुक्ल जी की हस्तलिपि अत्यन्त सुन्दर थी। हस्तलिपि से प्रभावित होकर मिर्जापुर के कलक्टर विंढम साहब ने शुक्ल जी की नामज़दगी नायब तहसील-दारी के लिए कर दी। नायब तहसीलदारी की परीक्षा में शुक्ल जी अच्छी तरह उत्तीर्ण हुए, अतः विंढम साहब ने नामज़दगी के साथ ही इन्हें एक अंग्रेजी आफिस में २०) मासिक पर फिलहाल नियुक्त कर दिया। लेकिन शुक्ल जी के आत्मसम्मान ने इन्हें अधिक दिनों तक टिकने न दिया। कार्यालय के प्रधान लेखक द्वारा रविवार को भी बुलाने पर इन्होंने त्यागपत्र दे दिया। यह वह समय था जब सरकारी अधिकारी किसी व्यक्ति के हृदय में आत्मसम्मान को जगने नहीं देना चाहते थे।

शुक्ल जी के लिए आत्मसम्मान जीवन का अमूल्य रत्न था, जिसे खोना मनुष्यत्व से भ्रष्ट होना मानते थे। नौकरी छोड़ने के पश्चात् प्रतिक्रियास्वरूप सं० १९५९ में शुक्ल जी ने 'इण्डियन रिव्यू' में 'ह्वाट हैज इण्डिया टू डू' नामक लेख लिखा। नौकरी त्याग के बाद सर्वत्र इनकी उपेक्षा होने लगी। पिता भी खिंचे रहते थे। अर्थसंकट के कारण सं० १९६५ में मिर्जापुर के मिशन स्कूल में २०) मासिक वेतन पर ड्राईंग मास्टरी कर ली। इस काम को शुक्ल जी ने बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया।

शुक्ल जी के साहित्य-निर्माण की दो पवित्र भूमियाँ रहीं हैं— मिर्जापुर तथा काशी। मिर्जापुर इनके साहित्य-निर्माण का आरम्भ था जिसमें काशी आने पर विकास, प्रौढ़ता और पूर्णता आई। शुक्ल जी को मिर्जापुर से विशेष प्रेम एवं लगाव था। शुक्ल जी के साहित्यिक होने का हेतु इनमें बाल्यकाल से ही उपस्थित था। माता से इन्होंने महान् साहित्यिक परम्परा का रक्त पाया था। इनकी माता गोस्वामी तुलसीदास के वंश की थीं। इनके पिता जी अच्छे काव्य-प्रेमी थे। 'प्रेमधन की छाया स्मृति' में शुक्ल जी ने लिखा है— "मेरे पिताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता और पुरानी हिन्दी कविता के बड़े प्रेमी थे। फ़ारसी कवियों की उक्तियों को हिन्दी कवियों की उक्तियों के साथ मिलाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। वे रात को प्राय: 'रामचरित मानस' और 'रामचन्द्रिका' घर के सब लोगों को एकत्र करके, बड़े चित्ताकर्षक ढंग से पढ़ा करते थे।" पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में शुक्ल जी को ऐसी साहित्यिक मित्र-मण्डली मिल गई जिसमें निरन्तर साहित्य-चर्चा हुआ करती थी। इनमें—श्रीयुत काशीप्रसाद जी जायसवाल, बा० भगवानदास जी हालना, पं० बदरीनाथ गौड़, पं० उमाशंकर द्विवेदी मुख्य थे। प्रारम्भिक काल में शुक्ल जी श्री रामगरीब चौबे से अप्रत्यक्षत: प्रभावित हुए। वे रमई पट्टी में शुक्ल जी के घर में ही रहते थे।

शुक्ल जी के साहित्यिक जीवन में काशी-आगमन एक मुख्य घटना है। सं० १९६६-६७ में 'हिन्दी-शब्द-सागर' का काम करने के लिए ये काशी आए। काशी आने पर इन्हें साहित्यिक कार्य करने के लिए सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन मिलने लगे। शुक्ल जी की प्रतिभा के विकास के लिए क्षेत्र देने का श्रेय 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को है, क्योंकि ये अपने सर्वश्रेष्ठ आलोचक के रूप में सभा के फर्मायशी कार्यों द्वारा ही दृष्टिगत हुए। सभा की जायसी ग्रन्थावली, तुलसी ग्रन्थावली तथा इतिहास ने ही इन्हें हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आलोचक बनाया। कुछ समय तक इन्होंने 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का सम्पादन-कार्य भी किया।

शब्द-कोष का कार्य सम्पन्न होने के बाद इनकी नियुक्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में अध्यापक पद पर हो गई। भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा के प्रतिस्थापकों में शुक्ल जी प्रमुख थे। हिन्दी-साहित्य में इनकी गहरी पैंठ, सुलझी बुद्धि और विचारों को बोधगम्य बनाने की सरल प्रणाली ने हिन्दी की उच्च शिक्षा व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान की। बाबू श्यामसुन्दर दास के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् ये जीवन-पर्यन्त अध्यक्ष पद पर अधिष्ठित रहे। शुक्ल जी श्वास रोग के मरीज थे। जाड़ों में इससे ये अधिक परेशान रहते थे। माघ सुदी ६, रविवार सं० १९९७ की रात को (९-९-३० के बीच) श्वास के दौरे के बीच सहसा हृदय-गति रुक जाने से इनका देहान्त हो गया।

शुक्ल जी बहुत बड़े आत्म-सम्मानी थे। आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए इन्होंने सरकारी एवं अलवर राज्य की नौकरी छोड़ी थी। गुलामी इनसे नहीं हो सकती थी। जिस समय ये महामना मालवीय जी की बात को न मानकर अलवर जाने लगे थे, उसी समय महामना जी ने इनसे कहा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि "न अलवर ही आपके लायक है और न आप ही अलवर के लालक हैं, मगर, खैर जाइए।' वास्तव में मालवीय जी इन्हें विश्वविद्यालय नहीं छोड़ने देना चाहते थे, पर अर्थाभाव के कारण ही ये अलवर चले गये थे और एक मास के बाद ही अलवर छोड़ कर चले आए। इनके स्वाभिमान के बारे में एक कहानी प्रचलित है कि एक बार ये फटी धोती पहने बैठे थे जिस पर इनकी धर्मपत्नी ने कहा-- 'तुम अच्छी नौकरी तो करते नहीं, यहाँ ७५) रु० पर जिन्दगी बिता रहे हो।' यह सुनते ही शुक्ल जी ने तुरन्त कहा—

चाथड़े लपेटे चने चाबेंगे चौखट पर,
चाकरी करेंगे नहीं चौपट चमार की।

आचार्य शुक्ल, जिस कारण साहित्य के क्षेत्र में निखरे रूप में प्रतिस्थापित हुए, वह थी उनकी गुण-दोष के संग्रह-त्याग की, नीर-क्षीर-विवेकिनी शक्ति। किसी के गुण-द्वेष के पकड़ की बड़ी तीक्ष्ण प्रज्ञा थी, जिसके कारण ही ये आलोचना के क्षेत्र में सबसे अधिक सफल हुए। यद्यपि इन्होंने कहानी, कविता, अनुवाद आदि रचना के क्षेत्र को अपनाया, पर स्थिरता आकर इन्हें आलोचना में ही मिली। आलोचना के क्षेत्र में आज भी शुक्ल जी ही आधार एवं मापदण्ड हैं। सभी आलोचक आलोचना लिखते समय एक बार अवश्य ही, चाहे पक्ष में अथवा विपक्ष में, शुक्ल जी का नाम अवश्य लेते हैं। आलोचक शुक्ल जी का प्रधान गुण है उनका गम्भीर व्यक्तित्व, जिसकी छाप उनकी रचनाओं, प्रधानतः निबन्धों तथा आलोचनाओं में मिलती है। इस गाम्भीर्य के साथ ही उनमें एक अन्य विरोधी गुण था-- हास्य, व्यंग्य और विनोद की प्रवृत्ति।

शुक्ल जी का कार्य अधिक गम्भीर और विशद था। इन्होंने नवीन साहित्यिक विचारधारा को सुशृंखल स्वरूप प्रदान किया। इन्होंने जायसी, सूर, तुलसी जैसे महाकवियों के काव्य को एक नवीन विवेचना द्वारा प्रस्तुत किया जो नवीन होते हुए भी प्राचीन कवियों के प्रति अत्यन्त उदार थी। इससे शुक्ल जी ने प्राचीन काव्य और उसमें व्यक्त संस्कृति को समादर की वस्तु बनाकर अत्यधिक लाभान्वित किया। शुक्ल जी की दृष्टि सदैव विचारों और सिद्धान्तों के क्षेत्र में बुद्धिवादी थी। बौद्धिक धरातल पर तौलकर ही ये किसी सिद्धान्त की स्थापना या मान्यता स्वीकार करते थे। ये विकासवाद के सिद्धान्त को मानते थे। इनके सिद्धान्तों और विचारों में लोक-भावना अथवा लोक-सिद्धान्त प्रमुख हैं। लोक-सिद्धान्त के आधार पर ही इन्होंने अपना काव्य-सिद्धान्त स्थिर किया है। इनकी लोकवाद की भावना व्यापक, उदार और सर्वदेशीय है, पर यह निरर्थक नहीं अपितु नियंत्रित और सार्थक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में प्रचलित विचारों से व्यक्ति अछूता नहीं रहता। प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रूप में वह अवश्य प्रभावित रहता है। आलोचक भी परिवेश को ध्यान में रखकर अपनी अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि कवि एवं 'सहृदय' के कर्म भिन्न-भिन्न अवश्य हैं लेकिन आलोचक का कवि-सुलभ गुणों से युक्त होना अनिवार्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ऐसे ही व्यक्ति थे। उनमें रचनात्मक शक्ति के साथ ही आलोचनात्मक शक्ति विद्यमान थी। उन्होंने निबन्ध, कविता आदि के साथ ही आलोचनाएँ भी लिखीं जिसमें उन्हें विशेष सफलता मिली।

आलोचक कवि की तरह अपनी मन की तरंग में नहीं लिखता। आलोचना मन की गंभीर स्थिति का परिणाम है, जिसमें बुद्धि के साथ हृदय भी लगा रहता है, पर विषय का विवेचन सापेक्ष्य होने के कारण बुद्धि का नियंत्रण चलता है। वास्तव में आलोचना बुद्धि-पक्ष- प्रधान कर्म है। आलोचना के लिए गांभीर्य, बुद्धि-पक्ष की प्रधानता तथा अध्ययनशीलता अत्यन्त आवश्यक है। आचार्य शुक्ल इन्हीं गुणों के कारण हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक हो सके। उन्होंने अपनी विवेचना-शक्ति के द्वारा हिन्दी-आलोचना को सत्य और सुव्यवस्थित मार्ग पर सर्वप्रथम लगाया जिससे ये आलोचना के प्रथम प्रतिस्थापक कहे जाते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में आलोचना का जो स्वरूप मिलता है वह आधुनिक आलोचना से भिन्न था। प्राचीन आलोचक किसी कवि पर अपने विचार सूत्र-रूप में एकाध श्लोक में व्यक्त कर देते थे। लक्षण-ग्रन्थों में एक आचार्य दूसरे आचार्य द्वारा निर्मित लक्षण का खंडन-मंडन करता था। ऐसी आलोचना व्यावहारिक आलोचना कहलाती थी। बाद में भारतीय रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि से सैद्धान्तिक आलोचना शुरू हुई।

हिन्दी में 'सच्ची समालोचना' के आरम्भक श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' तथा श्री बालकृष्ण भट्ट माने जाते हैं। इन लोगों ने सं० १९४२-४३ में अपनी-अपनी पत्रिकाओं—'आनंद-कादंबिनी' और 'हिन्दी-प्रदीप' में इसका आरम्भ किया था। 'प्रेमधन' जी ने 'वंगविजयता' की आलोचना की थी और भट्ट जी ने प्रेमधन जी के साथ 'संयोगिता स्वयंबर' की आलोचना अपनी-अपनी पत्रिकाओं में की। इन आलोचनाओं में आलोचकों की दृष्टि गुण-दोष दर्शन के साथ कहीं-कहीं विवेचन पर भी उद्घाटित हुई है। उस युग के अनुसार आलोचना के गुण इन लोगों में विद्यमान थे। आगे चलकर मिश्र बन्धुओं (श्री श्यामबिहारी मिश्र तथा श्री शुकदेवबिहारी मिश्र) ने 'हम्मीर हठ' की आलोचना लिखी। अपने आरंभिक रूप में हिन्दी-आलोचना केवल गुण-दोष दर्शन के रूप में थी। उस समय जो आलोचनाएँ होती थीं, वे प्रायः किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक को लेकर ही, पत्रिकाओं में संपादकों द्वारा ही की जाती थी। उनको पुस्तकीय तथा व्यवस्थित रूप नहीं मिल पाया था।

हिन्दी में पुस्तकाकार में आलोचना का प्रादुर्भाव सं० १९५८ में (सन् १९०१) श्रीगणेश द्विवेदी जी की 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' से होता है जिसमें "लीला सीताराम बी० ए० के कुमारसंभव, ऋतु संहार, मेघदूत और रघुवंश भाषा विषयक विचार" थे। द्विवेदी जी के बाद मिश्रबंधु, पद्मसिंह शर्मा आदि की आलोचनाएँ आईं जिनमें कुछ-कुछ पक्षपात की प्रवृत्ति के दर्शन हो सके। बाद में इसी शैली के आलोचक श्रीकृष्णबिहारी मिश्र की आलोचना कवियों की विशेषताओं की परिचायिका तथा मार्मिक है, जिसमें विवेचना की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। बाबू श्यामसुन्दर दास सर्वप्रथम सन् १९२०-२१ में सैद्धान्तिक आलोचना की ओर अग्रसर हुए और पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर—'साहित्यालोचन' प्रस्तुत किया। इस समय तक आलोचना का प्रवाह कुछ अग्रसर हो रहा था जिसमें गुण-दोष-निदर्शन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं के निरूपण की प्रवृत्ति मिलने लगती है, पर इनकी संख्या सीमित थी। इस समय तक की आलोचनाओं में विवेचनात्मक आलोचना का सच्चा स्वरूप नहीं था जिनमें कि समालोच्य साहित्यकार की कृतियों का निरूपण देश-काल की परिस्थिति के अनुसार किया जाता है तथा जिसमें आलोच्य के विचारों का ध्यान रखा जाता है। इस वास्तविक विवेचनात्मक आलोचना का आरंभ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। उनकी तुलसी, सूर, जायसी की आलोचनाओं में आलोचना के विवेचनात्मक स्वरूप के दर्शन हमें मिलते हैं।

कोई आलोचक किसी कवि या कृति पर विचार करते समय अपनी रुचि को अलग नहीं कर पाता। समर्थ और शिष्ट रुचि वाला आलोचक अपने लिए आलोचना के कुछ सिद्धान्त निर्धारित करता है जो उसकी आलोचना के आधार होते हैं। यही कारण है कि आलोचक मीमांसक भी होते हैं। वे साहित्य-सिद्धान्त और आलोचना दोनों प्रस्तुत करते हैं। आचार्य शुक्ल इसी श्रेणी के आलोचक थे। इन्होंने आलोचना के साथ ही काव्य के सिद्धान्त भी निर्धारित किए। उनके कुछ अपने काव्य-सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर उनकी आलोचनाएँ खड़ी हैं। ये हिन्दी के प्रथम आलोचक हैं, जिन्होंने काव्य-सिद्धान्त के साथ ही आलोचनाएँ भी प्रस्तुत कीं। इनके पहले जितने भी आलोचक थे उनका आधार संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में निर्धारित काव्य-सिद्धान्त थे। वे प्राचीन सिद्धान्तों से चलकर लक्ष्य तक पहुँचना चाहते थे। आचार्य शुक्ल ने अपना सिद्धान्त स्थापित किया और उसके अनुसार लक्ष्य की ओर चले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षक को सहृदय होना चाहिये, क्योंकि उसे समानधर्मा बतलाया जाता है, फिर भी उसका क्षेत्र भिन्न है। कुछ आलोचक कवि भी होते हैं, आचार्य शुक्ल ऐसे ही आलोचक थे। संस्कृत के आचार्यों ने कवित्व और समीक्षकत्व को समान देखकर कवि और समीक्षक में अभेद माना है। पर, राजशेखर, स्वरूप और विषयभेद के कारण कवित्व एवं भावकत्व में भेद मानते हैं, क्योंकि समानधर्मा होते हुए भी कवि–कर्म रचनात्मक है और आलोचक का कार्य विवेचनात्मक; कवि में रचना-शक्ति प्रधान होती है और समीक्षक में भाविका-शक्ति।

पाश्चात्य समीक्षकों ने आधुनिक आलोचना पर ध्यान दिया है। अंग्रेज समालोचक एबरक्रोम्बी के अनुसार आलोचक में मर्मभेदिनी काव्य-दृष्टि, कवि और काव्य के प्रति सहानुभूति, कवि की मनोदशा समझने के लिए काल्पनिक ग्राह्यता, व्यावहारिक ज्ञान, नीर-क्षीर-विवेकिनी शक्ति तथा ऐसे ही अन्य गुण होने चाहिए। आलोचक में निरीक्षणशक्ति तथा व्यापक काव्यमर्मज्ञता आवश्यक है। आलोचना को आचार्य शुक्ल हमेशा एक गंभीर कार्य मानते रहे हैं और इसके लिए अध्ययन, मनन, और निरीक्षण, मार्मिक काव्यदृष्टि आदि को आवश्यक माना है। शुक्ल जी में अध्ययन, मनन और चिन्तन की प्रवृत्ति आरम्भ से ही रही है, यही कारण है कि साहित्य के संबंध में विचारपूर्वक सिद्धान्त की विवेचना एवं स्थापना उनकी रचनाओं में आरम्भ से हो मिलती है।

हिन्दी-आलोचना-क्षेत्र में आचार्य शुक्ल के ऐतिहासिक महत्त्व, उनकी साहित्य-चिन्तना शक्ति, उनकी विषयविधान-विशिष्टता आदि विशेषताओं का विशिष्ट महत्त्व रहा है। आचार्य शुक्ल ऐसे आलोचक थे जिन्होंने अपना एक मौलिक निकाय स्थापित किया है। जिसके माध्यम से चलकर वह सुलझी बुद्धि और परिष्कृत हृदय द्वारा साहित्य-चिन्तन के लक्ष्य तक पहुँचे हैं और निर्णीत लक्ष्य को दृष्टि-पथ में रखकर इतना प्रभूत और मान्य कार्य किया है कि साहित्य पर उनकी अमिट छाप पड़ गई है जिससे कि अनेक साहित्यकार उनके अनुगामी हो गए हैं। इसीलिए उन्हें (शुक्ल जी को) एक सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक माना जाता है, जिस पर उनके अनुगामी चलकर उनकी मान्यताओं का प्रतिपादन, समर्थन और विकास करते हैं। इस निकाय के प्रमुख एवं मान्य आलोचकों में पं० कृष्णशंकर शुक्ल, डॉ० राजबली पाण्डेय, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि आते हैं। यद्यपि शुक्ल जी के समानान्तर चलने का बहुत से आलोचकों ने दुस्साहस किया है फिर भी 'दूसरी परम्परा की खोज' आज भी जारी है। और आचार्य शुक्ल के बाद 'दूसरी परम्परा की खोज' अंधेरे में भटकनामात्र सिद्ध हो रही है।

—उपाध्याय, हिन्दी विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसर परिक्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द निर्वाण-शताब्दी व्याख्यानमाला

गुरुकुल कांगड़ी परिसर में दयानन्द निर्वाण-शताब्दी व्याख्यानमाला का शुभारम्भ उत्साह के साथ हुआ। ३० अगस्त १९८४ को प्रथम उद्घाटन व्याख्यान देते हुए पंजाब विश्वविद्यालय की 'दयानन्द पीठ' के आचार्य एवं अध्यक्ष डॉ० भवानीलाल भारतीय ने आर्य समाज की उपलब्धियों और सीमाओं पर तथा स्वामी दयानन्द के विचार आधुनिकता की कसौटी पर, विस्तार से प्रकाश डाला।

डॉ० भारतीय यहाँ नगर के शिक्षा-शास्त्रियों, बुद्धिजीवियों, पत्रकारों तथा सांस्कृतिक मंचों के प्रतिनिधियों की भारी सभा को सम्बोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि भारत की राष्ट्रीय जागृति में आर्य समाज का शानदार योगदान रहा है। राजनीतिक जीवन में जो ह्रास तथा जीवन-मूल्यों का विघटन दिखाई दे रहा है, उसके लिए आर्य समाज को एक जोरदार अभियान चलाना होगा। सार्वजनिक जीवन का शुद्धिकरण आज की प्रमुख आवश्यकता बन गया है। हमें यह स्मरण करना होगा कि आर्य समाज को जो प्रारम्भ में सफलता मिली उसका प्रमुख कारण आर्य समाजियों का उदात्त एवं आदर्श चरित्र ही था। स्वामी दयानन्द ने सत्यधर्म की स्थापना की थी। वह उदार तथा मानवतावादी विचारक थे। दलितोद्धार तथा अस्पृश्यता का निवारण आर्य समाज की सामाजिक क्रान्ति के ध्वजवाहक रहे हैं। आर्य समाज मानव समुदाय की एकता का पक्षपोषक रहा है। उसकी दृष्टि में जन्म, रंग, प्रांत, देश, लिंग आदि के आधार पर भेद-भाव की जो रेखाएँ उभर आई हैं वे सर्वथा कृत्रिम हैं तथा मानव समाज की उन्नति में बाधक हैं। उसकी तो यह धारणा रही है कि प्रत्येक वर्ग को शिक्षा-संस्कार तथा सदाचार की दृष्टि से उन्नत बनने का अवसर मिलना ही चाहिये। भारतीय समाज को विषमता, पार्थक्य तथा भेदभाव के वात्याचक्र से मुक्त कर स्वतंत्रता, समता तथा बन्धुत्व का स्वस्थ वातावरण प्रदान करना आर्य समाज का लक्ष्य रहा है। इतना होने पर भी यह देखना चाहिये कि आर्य समाज के आन्दोलन में शैथिल्य, हताशा और दिग्मूढ़ता का समावेश क्यों और कैसे हुआ ? आर्य समाज का तर्काश्रित धर्म और बुद्धिवाद से प्रबोधित मतवाद लोग क्यों स्वीकार न कर सके ? भाव प्रवण निराकारोपासना की सामान्य विधि के अभाव, योगमार्ग की व्यापक शिक्षा की कमी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्‌मय तथा वेदांगों, उपांगों का दयानन्दसम्मत अर्थ-भाष्य की उपेक्षा तथा प्रचार प्रणाली की जड़ता के कारण हमारा लक्ष्य पूरा नहीं हो सका। दयानन्द के सूत्रों को पकड़ कर वेदों की व्याख्यान प्रणाली हम निश्चित करें तथा उससे आधुनिक समस्याओं का निदान खोजें। वेदों के पारमार्थिक तथा व्यावहारिक पक्षों का उद्‌घाटन कर सर्वप्रथम, स्वामी जी ने ही वेदार्थ-चिन्तन की युगान्तरकारी धारणा विश्व को दी थी।

सभा की अध्यक्षता करते हुए कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने कहा कि आज विश्व जिन विस्फोटक स्थितियों से गुजर रहा है, उनसे मानवधर्म, लोकतंत्र, सामूहिक उन्नति, चारित्रिक-मूल्य तथा राष्ट्रीय एकता को खतरा पैदा हो गया है। अतः इन जटिल समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी के कार्यों का मूल्यांकन होना चाहिये। स्वामी जी भारतीय नवजागरण के अग्रदूत थे तथा समाज-सुधार, शिक्षा, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति, स्वतंत्रता, स्वराज तथा धार्मिक नवोत्थान की उन्होंने ही सर्वप्रथम परिकल्पना की थी। आत्मिक तथा भौतिक उन्नति का ऐसा संतुलित उपाय इतने विशद् और व्यवहारिक स्तर पर महर्षि से पूर्व किसी समाज-सुधारक तथा युग-द्रष्टा ने नहीं दिया था।

इसी क्रम में दूसरा व्याख्यान ३१ अक्तूबर १९८४ को आयोजित किया गया। आमन्त्रित व्याख्याता थे, सुप्रसिद्ध विचारक डा० प्रभाकर माचवे। डा० माचवे स्वयं उपस्थित न हो सके। किन्तु उन्होंने अपना चौंतीस पृष्ठों का व्याख्यान 'दयानन्द, गाँधी और मार्क्स' भेज दिया। डा० माचवे ने बताया कि दयानन्द के स्पष्ट विचार थे कि किसी भी समाज में आवश्यकता से अधिक धन का जमाव ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह तथा घृणा पैदा करता है। उनका कहना था कि पूंजी ही विलासिता की जननी है अतः उसका सामाजिक सत्कार्यों के लिए विनियोग आवश्यक है। श्रम और दान जीवन के प्रमुख अंग हों। स्वामी जी विदेशी भाषा तथा विदेशी सत्ता के प्रखर विरोधी थे। उनके आर्य समाज ने अध्यवसाय, मितव्ययिता, दूरदर्शिता तथा निर्व्यसनशीलता का जीवन में मूल्यों की तरह प्रचार-प्रसार किया जबकि गाँधी जी इस अर्थ में समाजवादी थे कि अन्तिम व्यक्ति तक सर्वोदय हो। वे भी देश को साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शोषण के पंजे से मुक्त कराना चाहते थे। वे जनसाधारण में विश्वास करते थे। उनके समाजवाद का अर्थ था— सर्वोदय। वह अंधों, बहरों तथा गूंगों की राख पर नहीं खड़ा होना चाहते। वह समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हामी हैं। उनके अनुयाई कई परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले थे, क्रांतिकारी, आंतकवादी, लिबरल नरमदल वाले भी। अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्म, अध्ययन, नास्तिकता, धर्म-विरोध— सभी पर गाँधी जी ने एक निपुण भारतीय किसान या मजदूर की दृष्टि से विचार किया था। डॉ० माचवे ने बताया कि स्तालिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा मार्क्स में क्या अन्तर है ? हिन्दी प्रदेशों में मार्क्सवाद क्यों विलम्ब से आया तथा मानवेन्द्रराय की दृष्टि में मार्क्स क्या थे ? आज के भारत को ध्यान में रखकर शस्त्र और शास्त्र विरोध, धर्म और धर्मनिरपेक्षता, रुढ़ि और पाखण्ड-खण्डन, मतवाद और समाज- विकास पर पुनर्विचार आवश्यक है। अन्यथा सही अर्थ में न तो 'सत्य के अर्थ पर प्रकाश' पड़ेगा, न 'पूंजी' की गुलामी से मुक्ति मिलेगी, न 'हिन्दस्वराज्य' और 'नवजीवन' के लाभ 'हरिजन' को भी मिल सकेंगे। उन्होंने इस चर्चा में १८२४ से १९४८ यानी दयानन्द सरस्वती के जन्म से गाँधी के महानिर्वाण की शती की भारतीय चेतना को उजागर किया और यूरोप में और विश्व में कार्लमार्क्स के वैचारिक प्रभाव की चर्चा की।

गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने कहा कि तीनों विद्वानों के विचारों और कार्यों की परिणति देखकर उनके कार्यों की महत्ता आँकनी चाहिए। इस दृष्टि से तीनों अपने लक्ष्य में सफल हुए हैं। भूतपूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत ने कहा कि दयानन्द को मार्क्स जैसे समर्पित अनुयाई नहीं मिले फिर राज्यसत्ता हथियाने की बात मार्क्सवादियों की तरह, दयानन्दवादियों ने कभी सोची भी नहीं। दिनमान के पूर्व सम्पादक श्री श्यामलाल शर्मा ने माचवे जी की एम०एन० राय विषयक धारणा का खण्डन किया। इस बहस में अनेक स्थानीय महाविद्यालयों के अध्यापकों, पत्रकारों तथा शोध-छात्रों ने भी भाग लिया। बहस की प्रस्तावना में कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने बताया कि राष्ट्रहित में समर्पण, श्रम और दान की वृत्ति वैदिक साम्यवाद का मूल है। भारतीय समाज में सभी वर्ग समान महत्त्व के हैं, यह ठीक है कि वर्ग वैषम्य के कारण अभी वह स्थिति नहीं आ पाई जिसकी कल्पना दयानन्द ने की थी। दयानन्द के इस अध्यात्मप्रेरित साम्य सिद्धान्त को श्रद्धानन्द (१८५६-१९२६) तथा गाँधी (१८६९-१९४८) ने आगे बढ़ाया और कालान्तर में उदारतावादी सुधारकों को उनसे प्रेरणा मिली।

सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए मार्क्स के अनुयाइयों को बहुत दूर तक सफलता मिली है पर विचार-स्वातंत्र्य तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य की ज्योति वहाँ निष्प्रभ हुई है। भारत में धार्मिक-सामाजिक संगठन के लिए विचार तो हुआ है, पर व्यावहारिक स्तर पर ऊँच-नीच, छुआछूत की भावना पर पूर्ण विजय नहीं प्राप्त की जा सकी। दयानन्द और गाँधी की अध्यात्मप्रेरित लोकक्रान्ति अभी शेष है तथा बुद्धिजीवियों के लिए यह एक सामयिक चुनौती है।

दोनों व्याख्यानों का संचालन हिन्दी-विभाग के रीडर डॉ० विष्णुदत्त राकेश ने किया।

—भोपालसिंह
एम०ए०, हिन्दी (प्रथम वर्ष)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्रौढ़-शिक्षा के प्रगति-क्रम का निरीक्षण

२४ जुलाई सन् १९८४ ई० को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के पुस्तकालय भवन में प्रौढ़ शिक्षा की सलाहकार समिति की बैठक सम्पन्न हुई, जिसकी अध्यक्षता माननीय कुलपति जी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने की। इसमें प्रौढ़ शिक्षा के संचालन, प्रसार, प्रबन्ध तथा प्रशिक्षक-प्रशिक्षण संबंधी विभिन्न विषयों पर निर्णय लिया गया जोकि प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार और प्रसार में सहायक सिद्ध हों, तथा ऐसे कारगर उपायों पर भी विचार किया गया जिसमें गांव वाले अधिक से अधिक रूचि लें। और इसी सलाहकार समिति ने प्रौढ़ शिक्षा की कार्यकारिणी का भी गठन किया गया।

२८ जुलाई सन् १९८४ ई० को "प्रौढ़ शिक्षा" कार्यकारिणी की बैठक माननीय आचार्य जी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार की अध्यक्षता में तथा उन्हीं के कार्यालय में हुई। जिसमें प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में आने वाली समस्याओं पर विचार किया गया। प्रशिक्षक-प्रशिक्षण की तिथियों का निर्धारण किया गया तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सूचना दी गयी।

१ अगस्त सन् १९८४ से "प्रौढ़ शिक्षा" प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण कार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में प्रारम्भ किया गया, जिसमें विभिन्न विषयों के विद्वानों को आमंत्रित किया गया और उन्होंने प्रशिक्षण शिविर में अपनी सेवाओं का योगदान दिया। यह कार्यक्रम ७ अगस्त १९८४ को सम्पन्न हो गया। प्रशिक्षक लोग अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानों पर पहुंच गये। जहाँ पर कि उनको प्रशिक्षण कार्य प्रारम्भ कर देना है।

अगली "प्रौढ़ शिक्षा" कार्यकारिणी की समिति की बैठक १० नवम्बर सन् १९८४ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रधान कार्यालय में हुई जिसकी अध्यक्षता माननीय कुलपति जी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने की। इस बैठक में प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को अधिक प्रभावी तथा कारगर बनाने पर अधिक जोर दिया गया। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकरण के उपाय सुझाये गये। माननीय कुलपति जी ने अधिक जोर पिछड़े गांवों की तरफ दिया तथा सुझाव दिया कि ज्यादा गांवों को न लेकर सीमित गांव लेकर वहां से निरक्षरता समूल नष्ट की जाये तथा कुछ गांव योजना के अन्तंगत लिये गये जिनसे निरक्षरता पूर्ण रूप से दूर की जायेगी।

प्रौढ़ शिक्षा की प्रगति के लिए नवम्बर १९८४ ई० में ही दो प्रौढ़ शिक्षा पर्यवेक्षकों को नियुक्त किया गया जिनके द्वारा प्रौढ़ शिक्षा-प्रशिक्षकों के कार्य का अवलोकन तथा प्रगति की समीक्षा की जायेगी।

कार्यक्रम में कार्य की अधिकता को देखते हुए दो पार्ट टाइम क्लर्कों की नियुक्ति की गयी तथा एक पार्ट टाइम चपरासी रखा गया है। उन क्लर्कों के कार्य का विवरण इस प्रकार है— प्रथम क्लर्क हिसाब देखेंगे तथा दूसरे क्लर्क पत्राचार संबन्धी कार्य को देखेंगे।

इन सब कर्मचारियों के अतिरिक्त अतिशीघ्र एक परियोजना अधिकारी को नियुक्त किया जायेगा। इन सबसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में स्टाफ की वृद्धि हुई है जिससे प्रौढ़ शिक्षा का विकास और तीव्र किया जा सकेगा।

अब प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की प्रगति तथा विस्तार को देखते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से ३० नये केन्द्र और लेने की सिफारिश की जा रही है जबकि ६० केन्द्रों की स्वीकृति विश्वविद्यालय को पहले से ही स्वीकृत है।

प्रौढ़ शिक्षा के पर्यवेक्षकों ने अपना पद-भार सम्भाल लिया है तथा कार्य प्रारम्भ कर दिया है। हमारे पर्यवेक्षक गांव-गांव में जाते हैं तथा जन-संपर्क करते हैं, जिससे यह पता लगाया जा सके कि किस स्थान पर अधिक निरक्षर लोग हैं तथा वहां पर अपना प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किया जा सके। विशेषतया गरीब मजदूर तथा किसानों के पास जाने के आदेश विश्वविद्यालय द्वारा दे दिये गये हैं। इसलिये अधिकतर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र हरिजन बस्तियों में ही खोले गये हैं।

जिन केन्द्रों पर प्रशिक्षुओं की संख्या कम है, पर्यवेक्षकों को आदेश दिये गये हैं कि वे उनका पता लगायें तथा संख्या पूरी करने के प्रयास करें तथा संख्या कम होने का कारण खोजें।

निकट भविष्य में ही प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत पर्यवेक्षकों तथा प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण की योजना बनायी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५-११-८४ को माननीय कुलपति जी ने प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का निरीक्षण किया जो कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा कांगड़ी ग्राम तथा गाजीवाला बिजनौर में चलाया जा रहा है। उन्होंने कार्य की समीक्षा की तथा विकास संबन्धी निर्देश दिये।

विभिन्न समस्याओं के होते हुए भी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित "प्रौढ़ शिक्षा" कार्यक्रम प्रगति की ओर अग्रसर है तथा इसका भविष्य उज्जवल है। जिन गांवों को लक्ष्य बनाया गया है उन्हें पूर्ण करने में शीघ्र ही यह विश्वविद्यालय सफलता प्राप्त करेगा।

—डॉ० त्रिलोकचन्द

संयोजक, प्रौढ़ शिक्षा-विभाग

—✲✲—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल विश्वविद्यालय में माइक्रोबायोलोजी

डा० वी०डी० जोशी
अध्यक्ष, जन्तु-विज्ञान-विभाग

विगत दो दशकों से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का विज्ञान-महाविद्यालय स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ कराये जाने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहा पर कतिपय अपरिहार्य कारणों से यह प्रारम्भ होकर भी संभव न हो सका। इस स्थिति से विज्ञान महाविद्यालय कुछ उपेक्षित सा भो प्रतीत होता था। पर चूँकि विगत दशक को पूरी दो पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान वि०अ०आ० की 'प्लान पैनल कमेटी' ही यहाँ न आ सकी थी, अतः कुछ न किया जा सका।

इस वर्ष फरवरी माह में माननोय कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा के अथक् प्रयत्न एवं व्यक्तिगत प्रभाव के फलस्वरूप वि०अ०आ० का पैनल, मानो माता सरस्वती के वरदान के रूप में ही इस विश्वविद्यालय में आया। आपसी विचार-विमर्श और तथ्यों ने इस बात को पुष्टि को कि 'विज्ञान महाविद्यालय' के विभिन्न विषयों में स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ होना ही चाहिये। कुलपति श्री हूजा जी की भी हृदय से इच्छा रही है कि विश्वविद्यालय का बहुमुखी विकास हो, और हमारे स्नातकों को नौकरी पाने के लिये दूर-दूर तक एवं देर तक भटकना न पड़े। अतः उनकी सदाशयतापूर्ण संस्तुति के आधार पर ही वि०अ०आ० ने विज्ञान महाविद्यालय में 'जन्तु विज्ञान' एवं 'वनस्पति विज्ञान' विभागों को मिलाकर एक अत्याधुनिक वैज्ञानिक विषय 'माइक्रोबायोलोजी' में स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ करने की स्वीकृति प्रदान को।

गुरुकुल के लिये यह निश्चय ही अत्यन्त गौरव की बात है कि 'पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय' के बाद राज्य में यह एकमात्र 'परम्परावादी' शिक्षा केन्द्र है जहाँ 'माइक्रोबायोलोजी' को पूर्ण विषय के रूप में स्नातकोत्तर कक्षा में पढ़ाया जायेगा। इस उपलब्धि का महत्त्व और भी द्विगुणित हो गया है, क्योंकि (संभवतः) देश का यह पहला विश्वविद्यालय होगा जहाँ स्नातकोत्तर स्तर पर विज्ञान के एक विषय को यू०जी०सी० की 'शिक्षा-परीक्षा सुधार नीति' के अनुसार नूतन 'क्रेडिट प्रणाली' के अनुसार पढ़ाया जाना है। अस्तु!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माइक्रोबायोलोजी क्या है ?

विश्वविद्यालय परिसर के अन्दर, बाहर कई बार परिचितजन यह प्रश्न पूछते हैं। स्वाभाविक भी है। क्योंकि साधारण अथवा सामान्य जनमानस के समक्ष यह एक 'नवीन' विषय है।

'माइक्रोबायोलोजी'—माइक्रोब्स अथवा माइक्रो आर्गेनिज्म (अत्यन्त सूक्ष्म जीवजन्तुओं) के संगठित व्यावहारिक एवं आधारिक पठन-पाठन की विद्या का नाम है। भाषा विन्यास की दृष्टि से यह दो शब्दों की युति से बना हुआ है 'माइक्रोब' + 'बायोलोजी'। अतः स्पष्ट हुआ कि इस विषय के अन्तर्गत हम अत्यत सूक्ष्म जीव-जन्तुओं की, जो प्रायः 'माइक्रोस्कोपिक' हैं (सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखे जा सकते हैं) के जीवनचक्र, रचना, हानि-लाभ, भौगोलिक एवं पर्यावरणीय वितरण उपयोगिता से सम्बन्धित ज्ञान का अध्ययन करते हैं।

'माइक्रोबायोलोजी'—अपने आप में एक पूर्ण नवीन तथा पूर्णतः शुद्ध विषय भी नहीं है। कई अन्य आधुनिकतम विषयों जैसे, साइटोलोजी, जेनेटिक्स, जूलोजी, बौटेनी, वायरोलोजी, बैक्ट्रीरियोलोजी, स्टोटिक्स, कैमिस्ट्री, इकालाजी आदि के समन्वयन से— 'माइक्रोबायोलोजी' को पूर्णता प्राप्त होती है। पर मूलतः इस विषय के निम्न चार एकक हैं—

१. जन्तु : प्रायः एककोषीय जन्तु यथा प्लाजमोडियम (मलेरिया का जीव), एन्टअमीबा (पेचिस का कारण) फाइलेरियल वर्म (हाथी पाँव रोग का कारण) आदि।

२. वनस्पति : कई प्रकार की नन्हीं-नन्हीं एवं बड़ी वनस्पतियाँ यथा पेनीसिलियम, ईस्ट, डायएटम्स आदि।

३. वायरस : अत्यन्त सूक्ष्म विषाणुओं का समूह जो जब तक किसी 'जीवित' जन्तु अथवा पौधे के संसर्ग में नहीं आता, निष्क्रिय ही रहता है, परन्तु जीवन के सम्पर्क में आते ही प्रायः मुसीबत का भंडार बन जाता है। जैसे इनफ्लूएन्जा, चेचक आदि के विषाणु (वायरस)।

४. बैक्टीरिया : यह भी बहुत छोटे ज़ीवाणु होते हैं। लाभदायक भी होते हैं और हानिकारक भी। जैसे दही को बनाने वाले (लैक्टो बैसिलस) या न्यूमोनिया, क्षय और डिप्थीरिया जैसे रोगों के बैक्टिरिया।

आर्थिक महत्त्व :

इन सूक्ष्म जीव-जन्तुओं का [विशाल आर्थिक महत्त्व है। यह ध्यान में रखने की बात है कि 'आर्थिक महत्त्व' के अन्तर्गत हम 'हानि और लाभ' दोनों पक्षों का अध्ययन करते है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य तो यही है कि इस धरा को कुछ भी धारण करने योग्य यही माइक्रो आर्गनिज्म (Micro organisms) बनाए हुये हैं। जैविक विकास की दृष्टि से इस पृथ्वी पर सबसे पहले इन्हीं सूक्ष्मजीवियों के नन्हे-मुन्नों ने जोवन का मायाजाल रचा था। आज जो कुछ भी इस 'नक्षत्र'— पृथ्वी पर है उसका 'बीज' रूप एक वायरस-अथवा-बैक्टीरिया अथवा एक 'प्रोकैरियोट' रूपी जीवन का ब्ल्यूप्रिंट ही था। मात्र इसीलिये आज 'जीवन' क्या है ? अथवा जीवन का निर्माण और नियन्त्रण किस तरह होता है ? इसे समझने के लिये 'जैव वैज्ञानिक' मनुष्य, हाथी, घोड़े, चिड़िया, साँप, मेंढक अथवा मछली की कोशिका का अध्ययन नहीं करता— अपितु एक अत्यन्त सर्व सरल रूप की जीवनाकृति— **इश्चरेश्चिया कोलाई**— नाम के हमारे ही एक सहजीवी बैक्टीरिया का अध्ययन करने पर मजबूर है। निश्चय जानिये जिस दिन (और वह दिन अब बहुत दूर नहीं है) मानव इस एक कोषा वाले सरलतम बैक्टिरिया के समस्त क्रिया–कलापों को पूर्णतः समझ लेगा, उस दिन शायद मानव अमरता की परिधि में विचरण करने लगेगा। तो यह है— 'माइक्रोबायोलोजी' के अध्ययन से प्राप्त हो सकने वाली उपलब्धि की मात्र एक झलक।

वर्गीकरण— आर्थिक दृष्टि **एवं** अध्ययन की सहजता अथवा उपयोगिता की दृष्टि से इस जटिल विषय को आजकल कई तरह से वर्गीकृत करके पढ़ा-पढ़ाया जा रहा है, जैसे—

१. **सोईल माइक्रोबायोलोजी** (Soil Microbiology)— मिट्टी प्रकृति की सर्व-प्रथम प्राकृतिक रचना है, पर स्वयं में जीवनहीन, गन्धहीन, और अनेक जैविक गुणों से सर्वथा रिक्त है। सच जानिये मिट्टी को जीवन निर्माण की शक्ति अथवा जीवन के निमित्त–पोषण देने की शक्ति— वस्तुतः विभिन्न किस्म के माइक्रो-आर्गनिज्मस् की बदौलत ही मिलती है। जमीन की गीली-गीली सी अथवा ताजा खुदी— कोई सी भो सोंधी-सोंधी सी महक हो, या पूर्णतः सड़ी खाद की उदासीन गन्ध अथवा जैविक अंशों की अन्तिम परिणति—मिट्टी का मक्खन 'ह्यूमस' सब इन्हीं सूक्ष्म जीवों की मेहरबानी है। चट्टान को धीमे-धीमे गलाकर, विदीर्ण कर पोषक मिट्टी के चूर्ण में बदल देना भी इन्हीं का विषय है। इसी हेतु स्ट्रेप्टो-माइसेस, नोकार्डिया, माइक्रोमोनास आदि श्रेणी के सूक्ष्मजीवी होते हैं। भूमि कृमियों का अपना एक अन्य वर्ग है जो लाभदायक भी होता है और हानिकारक भी।

२. **प्लान्ट माइक्रोबायोलोजी** : इस विषयांग के अंतर्गत प्रायः दो प्रकार के सूक्ष्मजीवियों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। प्रथम तो वे जो रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार 'पादपीय' हैं जैसे फंगस एवं एलगी की कई किस्में, दूसरे वें जो पौधों से अभिन्न रूप से कई तरह के लाभ अथवा हानि की दृष्टि से संबधित हैं जैसे नाइट्रोसोमोनास अथवा एजो बैक्टर और प्लान्ट निमेटोडस् । (नोट—अब तो कई विद्वान एग्रीकल्चरल माइक्रोबायोलोजी को एक प्रमुख विषय मानकर उसके अंतर्गत ही भूमि, पादप, अनाज, अभव वन माइक्रोलोजी के अध्ययन को विस्तार दे रहे हैं ।)

३. **एनिमल माइक्रोबायोलोजी :** वस्तुतः इस नाम से कोई एक अलग विषय नहीं है। पर यह एक 'भावनात्मक विषय बोध' है । इसके अंतर्गत प्रायः पुनः दो प्रकार के सूक्ष्म जीवों का अध्ययन किया जाता है । प्रथम जो रचनात्मक दृष्टि से 'जंतु' हैं । द्वितीय जो अपने कार्यप्रभाव की दृष्टि से जंतुओं पर आधारित हैं, जैसे इश्चेरीश्चिया कोलाई (कई स्तनधारी जंतुओं की आंतों में रहने वाला एक सहजीवी), प्लाजमोडियम वायवेक्स (मलेरिया का जीव), दाद पैदा करने वालो फंगस, आंखों में जाले पैदा करने वाली फंगस, पेचिश, पायोरिया आदि के जीव, आदि ।

४. **मेडिकल माइक्रोबायोलोजी :** कई प्रकार के सूक्ष्मजीवी मानव, अनेक जीव-जंतुओं अथवा फसलों, फलों, शाक-भाजियों आदि को कई प्रकार से रोगग्रस्त करते हैं। इस तरह मानव समाज के आवश्यक हितों को क्षति पहुँचती है। दूसरी ओर कई प्रकार के सूक्ष्मजीव मानव के हित में इतने आवश्यक हैं कि उनके बिना मानव का स्वस्थ रहना असंभव है। सामान्य जनता के स्वास्थ्य संबंधी रखरखाव हेतु इन नन्हें-नन्हें माइक्रोब्स का अमूल्य योगदान है । रोग प्रतिरोध क्षमता के कई प्रकार के टीके (वैक्सीन), एन्टीबायोटिक्स, रक्तदान सबंधी आवश्यकताएँ इत्यादि का विस्तृत अध्ययन इस अंग के अंतर्गत किया जाता है। इससे संबंधित एक उपविभाग वर्तमान में पब्लिक हेल्थ एण्ड हाइजीन माइक्रोबायोलोजी के नाम से अध्ययन हेतु स्वीकृत है ।

५. **इन्डस्ट्रियल माइक्रोबायोलोजी :**

विभिन्न प्रकार के उद्योगों में 'माइक्रोब्स' महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जैसे चमड़े की टैनिंग, कागज, पटसन, सन, जूट, रस्सा-उद्योग, मादक पेय पदार्थ यथा बीयर, वाइन आदि, कई प्रकार के एसिड, दवाइयाँ, सिरका आदि का निर्माण-उद्योग कुछ विशेष प्रकार के माइक्रोब्स की दया पर ही निर्भर है ।

६. **एक्वेटिक माइक्रोबायोलोजी :** भोजन से पहले मानवीय आवश्यकताओं में जल का स्थान आता है। साथ ही 'पानी' हमारी कई प्रकार की दैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकताओं का एक आवश्यक आधार भी है। इस प्रक्रिया में पानी में कई प्रकार के अवांछित सूक्ष्म जीव-जंतुओं का समावेश हो जाना स्वाभाविक ही है। जैसे चमड़ें, दवाइयों के उद्योग में, कृषि संबंधित उद्योगों में, घरेलु सीवर लाइन के द्वारा आदि-आदि। अतः पानी को पुनः किस तरह रिसाइकिल किया जाय; रोगाणु-विषाणु रहित किया जाय अथवा किस प्रकार के जल में किन-किन तरह के माइक्रोब्स की निपति अथवा जीवनचक्र संभव है, महामारियों के प्रसार अथवा रोकथाम में किस प्रकार जल नियंत्रण आदि इस विषयांग के अन्तर्गत आते हैं।

७. **फूड एण्ड मिल्क माइक्रोबायोलोजी :** आज के वैज्ञानिक युग में विभिन्न प्रकार के अन्तर्देशीय भोजनों की यत्र-तत्र माँग रहती है, फिर हमारे दैनिक उपयोग में भी हर प्रकार के समाज में भोजन निर्माण, उसका अल्पकालिक संरक्षण, बासीपन अथवा अंतरिक्ष यात्रा में भोजन को लम्बे समय तक हानि रहित होने से बचाना, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट जेली, जैम, अचार, मक्खन, घी, शहद, पनीर को लम्बे समय तक उपयोगी बनाए रखना आदि का अध्ययन इस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। अकाल अथवा दुर्भिक्ष के समय इन सब बातों का महत्व और भी बढ़ जाता है। दूध का पाश्चराइजेशन भी इसी विज्ञान की देन है।

८. **इनविरोनमेन्टल माइक्रोबायोलोजी :** पूर्व में भी बताया जा चुका है कि माइक्रोब्स इस भू-मंडलीय पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। उदाहरणस्वरूप कल्पना करें यदि माइक्रोब्स घास, फूस, गिरी हुई पत्तियों, बेकार के कपड़े-लत्ते, कागज-पत्तर, मृत जीव-जंतुओं को सड़ाकर मिट्टी में न मिला दें या बहते पानी के कई माइक्रोब्स उस सड़न को पैदा होने से न रोकें या गोबर और पत्तियां और मल-मूत्र एक दुर्गंधरहित खाद में न बदली जा सके तो क्या हमारा पर्यावरण रहने योग्य रह सकेगा। 'गंगा' की पवित्रता और दीर्घकालीन ताज़गी का रहस्य भी अत्यंत सूक्ष्म जीवांशों को ही जाता है। साथ ही पर्यावरण को प्रदूषित कर भयंकर महामारियों के मूल में भी इसी विषय के 'जीव' होते हैं। संबधित ज्ञान का अध्ययन इसी विज्ञान का एक अंग है।

९. **जेनेटिक इंजीनियरिंग :** बीसवीं सदी भौतिक विज्ञान से प्रदत्त उद्योग सदी के रूप में मान्य है तो इक्कीसवीं सदी अथवा आने वाला कल निश्चय ही बायलोजी की इस सर्वनूतन शाखा पुत्री—जेनेटिक इंजीनियरिंग का युग होगा। यह प्रायः निर्विवाद है। मानव अथवा पालतु जानवरों में नये अंग प्रत्यारोपण होने हैं, किसी को एक महान बैज्ञानिक, कलाकार, राजनीतिनिपुण, धर्मात्मा, कठोर (फौलादी) पुत्र अथवा पुत्री चाहिये; घुंघराले; काले, नीले, भूरे, बालों वाली संतति चाहिये, किसी दुर्घटना के बाद कोई नया अंग बदलवाना है, गोरे रंग की सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संतान चाहिये, डायबिटीज, कैंसर, रतौंधी का इलाज अथवा गुलाब पौधे में आम, नीम के पेड़ में खजूर, २-२ किलो वजन का आलू, आदि २। यह सब संभव होने जा रहा जेनेटिक इंजीनियरिंग की बदौलत। और इसका मूल है इश्चरेश्चिया कोलाई बैक्टिरिया पर किये जा रहे विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग। यह सब भी माइक्रोबायोलोजी का ही प्रभाव है।

१०. कास्मिक अथवा स्पैस माइक्रोबायोलोजी : मानव आज अंतरिक्ष में विहार करने लगा है। वहाँ की भौतिक एवं रासायनिक परिस्थितियाँ पृथ्वी से सर्वथा भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। जीवन पर उन अनजानो परिस्थितियों का क्या प्रभाव होगा इसके अध्ययन एवं परीक्षण का कार्य और अन्य प्रभावों के अध्ययन में भी माइक्रोब्स का महत्वपूर्ण योगदान होने जा रहा है। अन्तरिक्षीय ग्रहों में जीवन की संभावनाओं की खोज भी वहां से प्राप्त अनेक तथ्यों में जीवाज्मों के सहारे बहुत कुछ निर्भर करती है। अतः यह इस विज्ञान की सबसे नवीन प्रशाखा है।

इस तरह हम देखते हैं कि माइक्रोबायोलेजी का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके बिना जीवन का हर पहलू अधूरा–सा लगता है। यह विषय अत्यंत रोचक, समाजोपयोगी, कुछ क्लिष्ट एवं खर्चीला भी है। प्रयोगशाला में विशेष परिस्थितियों अथवा एयर कंडीशन्ड प्रयोगशालाओं में प्रयोगात्मक कार्यों की निपति, साथ ही साथ हमारे नित्य के जल, भोजन, जख्म, रोग, फल, फूल आदि से जुड़ा हुआ यह विषय उतना ही रोमाँचक है जितना हमारे वैदिक वर्णित 'ईश्वर' का विराट स्वरूप। वस्तुतः इस विषय के सूक्ष्माति सूक्ष्म जीवों में ही ब्रह्मांड की विराटता छिपी हुयी है।

अंत में यह कहना उचित ही होगा कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विज्ञान महाविद्यालय में माइक्रोबायोलोजी विषय में स्नातकोत्तर कक्षाओं का शुभारम्भ, न केवल गुरुकुल विश्वविद्यालय के शिक्षा प्रचार-प्रसार की अन-न्यतम उपलब्धि का एक नया सोपान है, यह हरद्वार और प्रदेश के अन्य निकटतर क्षेत्रों के प्रतिभासंपन्न छात्रों को अपना भविष्य संवारने हेतु एक और नया आधुनिक क्षेत्र है। यह भी आशा की जानी चाहिये कि आगामी पंचवर्षीय योजना में विज्ञान के अन्य विषयों में भी स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ होंगी।

—**—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक-समीक्षा)

(समीक्षा के लिए प्रकाशन की दो प्रतियाँ आनी अनिवार्य हैं। एक प्रति भेजने पर प्राप्ति-स्वीकृति ही प्रकाशित की जाएगी।

—सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम	—	**कल्पसूत्र**
लेखक	—	**श्री कुन्दनलाल शर्मा**
प्रकाशक	—	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, होश्यारपुर (पंजाब)
प्रकाशन-वर्ष	—	१९८१
पृष्ठ-संख्या	—	२६+६७०
मूल्य	—	६० रु०

वैदिक साहित्य के इतिहास से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ प्राप्य हैं, किन्तु उनमें मूल ग्रन्थों के सम्यक् आलोडन से उपलभ्य प्रामाणिक तथ्यों, विविध प्रकाशित समीक्षात्मक पुस्तकों तथा विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में प्राप्य सामग्री का समाकलन नहीं किया गया है, जिससे वे न तो प्रामाणिक ही हैं और न पूर्ण ही। इस अभाव की पूर्त्ति की दृष्टि से गुरुवर्य स्वर्गीय कुन्दनलाल शर्मा जी (भूतपूर्व रीडर एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय, मुज़फ्फरनगर, उत्तरप्रदेश) ने सात खण्डों में समग्र वैदिक वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास प्रस्तुत करने की बृहती योजना बनाई। इनमें विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर (पंजाब) से १९८१ ई० में सप्तम खण्ड (कल्पसूत्र) तथा १९८३ ई० में षष्ठ खण्ड (वेदांग) प्रकाशित हो चुके हैं। दुर्भाग्यवश दुर्दैव के क्रूर हाथों ने श्री शर्मा जी को हमसे छीन लिया है। अवशिष्ट खण्डों के प्रकाशन की व्यवस्था उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा शर्मा जी कर रही हैं। सम्पूर्ण खण्डों के प्रकाश में आ जाने पर निश्चय ही यह वैदिक वाङ्मय का अनुपम तथा सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास-ग्रन्थ होगा।

श्री शर्मा जी ने अपनी योजना के सप्तम खण्ड रूप 'कल्पसूत्र' नामक ग्रन्थ में श्रौतसूत्र, शुल्बसूत्र, गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र इन चार वर्गों में विभक्त 'कल्पसूत्र' नामक सहित्य का विवेचनात्मक तथा समालोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है; उन्होंने इनके साथ ही पितृमेधसूत्रों तथा प्रवरसूत्रों का भी विवेचन किया है। भूमिकात्मक प्रथम अध्याय में विषय-प्रवेश तथा श्रौतसूत्रों के विकास का संकेत किया गया है; द्वितीय अध्याय में ऋग्वेदीय आश्वलायन तथा शाङ्खायन श्रौतसूत्रों; तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में कृष्णयजुर्वेदीय बौधायन, वाधूल, मानव, भारद्वाज, आपस्तम्ब, काठक, सत्याषाढ़, वाराह तथा वैखानस श्रौतसूत्रों; पञ्चम अध्याय में शुक्लयजुर्वेदीय कात्यायन-श्रौतसूत्र; षष्ठ तथा सप्तम अध्यायों में सामवेदीय आर्षेयकल्प (अथवा मशक-कल्पसूत्र), क्षुद्रकल्पसूत्र, जैमिनीय, लाट्यायन, द्राह्यायण तथा निदानसूत्र श्रौतसूत्रों और अष्टम अध्याय में अथर्ववेदीय वैतान-श्रौतसूत्र के प्रतिपाद्य विषयों, भाषा-शैली, रचना-काल, प्रणेता, विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्यों तथा प्रकाशित संस्करणों का सम्यक् वर्णन है। नवम तथा दशम अध्यायों का विवेच्य विषय शुल्बसूत्र हैं। नवम अध्याय में शुल्बसूत्रों के स्वरूप एवं प्रयोजन आदि के निर्देश के पश्चात् दशम अध्याय में विद्वान् लेखक ने बौधायन, मानव, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशीय (अथवा सत्याषाढ़), कात्यायन, मैत्रायणीय, तथा वाराह शुल्बसूत्रों का विस्तरेण विवेचन किया है। एकादश अध्याय में पितृमेधसूत्रों के स्वरूप एवं प्रयोजन के संकेत के पश्चात् बौधायन. भारद्वाज, आपस्तम्ब, मानव, आग्निवेश्य, कात्यायन, कौशिक, सत्याषाढ़–हिरण्यकेशीय, गौतम, कौषीतक, शाङ्खायन, आखलायन, काठक, वैखानस तथा तैत्तिरीय पितृमेधसूत्रों का विशद विवेचन किया गया है। द्वादश अध्याय का विषय प्रवरसूत्र हैं, जिसमें प्रवरसूत्रों के स्वरूप एवं प्रयोजन के उल्लेख के बाद बौधायन, आपस्तम्ब, आश्वलायन, कात्यायन, सत्याषाढ़, मानव तथा वाराह प्रवरसूत्रों का विशद वर्णन है। त्रयोदश से अष्टादश अध्यायों में गृह्यसूत्रों का विवरण है। त्रयोदश अध्याय में गृह्यसूत्रों के विषय एवं प्रयोजन के वर्णन के उपरान्त चतुर्दश अध्याय में आश्वलायन, शाङ्खायन, शाम्बव्य (कौषीतकि) तथा अमुद्रित ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों; पञ्चदश तथा षोडश अध्यायों में बौधायन, मानव, भारद्वाज, आपस्तम्ब, आपस्तम्ब–यज्ञपरिभाषासूत्र, आपस्तम्बीय एकाग्निकाण्ड, काठक, लौगाक्षि, आग्निवेश्य, हिरण्यकेशीय, वाराह, वैखानस, चारायणीय मन्त्रार्षाध्याय, पारस्कर तथा बैजवाप इन यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों;सप्तदश अध्याय में गोभिल कौथुम, खादिर,द्राह्यायण,जैमिनीय तथा अप्रकाशित(गौतम-गृह्यसूत्र तथा छन्दोग-गृह्यसूत्र) सामवेदीय गृह्यसूत्रों; और अष्टादश अध्याय में अथर्वेदीय कौशिकसूत्र का विशद वर्णन है। सभी ग्रन्थों के वर्णन में यथासम्भव प्रतिपाद्य विषयों, भाषा–शैली, रचना–काल, प्रणेता, भाष्यों तथा प्रकाशित संस्करणों के विवरण दिए गये हैं। एकोनविंश अध्याय में गृह्यसूत्रों के आधार पर विवाह तथा उसके प्रकार; विंश अध्याय में विवाह–संस्कार; एकविंश अध्याय में शिशु–संस्कार (जातकर्म, नामकरण तथा उपनयन), द्वाविंश अध्याय में आह्निककृत्य (होम, पञ्चमहायज्ञ, दर्शपूर्णमास, श्रवणा, आश्वयुजी कर्म, आग्रहायणी कर्म, कृषिकर्म तथा वृषोत्सर्ग); त्रयोविंश अध्याय में अन्त्येष्टिकर्म; चतुर्विंश अध्याय में श्राद्ध, पञ्चविंश अध्याय में श्राद्ध के विविध प्रकार (महापितृयज्ञ, पार्वणश्राद्ध, एकोद्दिष्ट, सपिण्डन, प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध, पिण्डान्वाहार्य, अष्टका श्राद्ध तथा अन्वष्टका) तथा ब्राह्मण भोजन एवं श्राद्ध में प्रयोज्य पदार्थ वर्णित हैं। षड्विंश से अष्टाविंश अध्यायों में धर्मसूत्र–साहित्य का विवेचन किया गया है। षड्विंश अध्याय में धर्मसूत्रों के उद्भव और विकास, धर्मसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों में सम्बन्ध, धर्मसूत्रों तथा धर्मशास्त्रों में सम्बन्ध, और मानव–धर्मसूत्र की समस्या पर विचार किया गया है। सप्तविंश अध्याय में गौतम, बौद्धायन तथा आपस्तम्ब इन प्राचीन धर्मसूत्रों; और अष्टाविंश अध्याय में वासिष्ठ, हारीत, हिरण्यकेशीय, शंख, वैखानस-धर्मप्रश्न तथा विष्णु इन अनतिप्राचीन धर्मसूत्रों के प्रतिपाद्य विषयों, भाषा-शैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना-काल, प्रणेता, भाष्यों तथा प्रकाशित संस्करणों के विवेचन/वर्णन के बाद अन्य धर्मसूत्रकारों (अत्रि, उशना, कण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातुकर्ण्य, देवल, पैठीनसि, बृहस्पति तथा भारद्वाज) का परिचय दिया गया है। धर्मसूत्रों का अवलम्बन करते हुए एकोनत्रिंश से चतुस्त्रिंश अध्यायों में क्रमशः वर्ण-व्यवस्था; आश्रम-व्यवस्था; गृहस्थाश्रम; वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम; राज-धर्म; और शुद्धि (अथवा शौच), पाप तथा प्रायश्चित्त का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विद्वान् लेखक ने सभी विषयों का मूल ग्रन्थों तथा विविध भाषाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित समालोचनात्मक ग्रन्थों एवं लेखों के आलोक में सर्वाङ्गीण प्रतिपादन किया है और स्थान-स्थान पर अपनी स्वच्छ, पक्षपातरहित एवम् अनतिवादी दृष्टि का परिचय देते हुए सन्तुलित निर्णय प्रस्तुत किए हैं।

ग्रन्थ के आरम्भ में प्राक्कथन के अतिरिक्त विषय-सूची तथा संक्षेप-सूची; और अन्त में अतीव उपयोगी उद्धरण-सूची, विशिष्ट-पद-सूची, पुस्तक-सूची, तथा शुद्धि-पत्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ सभी दृष्टियों से अत्युत्तम है और लेखक के मनोयोग-पूर्वक कठोर परिश्रम एवम् अध्यवसाय का परिचायक है। उन्होंने अभी तक उपलब्ध सम्पूर्ण सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग किया है। विद्वज्जगत् इस वैदुष्यपूर्ण ग्रन्थ के लिए उनका सदैव ऋणी रहेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ सभी दृष्टियों से प्रशंसनीय एवं सभी वेदज्ञों तथा वेदाध्यायियों द्वारा संग्राह्य है।

—डॉ० मानसिंह
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग

—✲✲—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम — **'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती'**

लेखक — **डा० भवानीलाल भारतीय**

प्रकाशक — वैदिक पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा, दयानन्दाश्रम, अजमेर

मूल्य — ४० रुपये

डा० भारतीय द्वारा रचित—'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' मैं दो ही दिन में आद्योपान्त पढ़ गया। आपने जिस परिश्रम से यह अनुसंधान किया है और जिस दिलेरी से अपने विचारों को प्रकट किया है, उसके लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

स्वामी जी ने अपने तीन वर्ष (१८५७-६०) के अज्ञातवास पर कोई प्रकाश नहीं डाला। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वह यदि ऐसा करते तो तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों के कोप का शिकार होते और देश के उत्थान का जो लक्ष्य उन्होंने अपने सामने रखा था, उसमें यथेष्ठ योगदान न दे सकते।

इस पुस्तक में यह भी संकेत है कि जब उन्होंने जोधपुर राजा को ब्रिटिश सरकार के किसी पत्र का उत्तर देने के लिए प्रेरणा दी तो उससे वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने।

अलबत्ता यह अनुसंधान का विषय है कि तत्कालीन जोधपुर नरेश उनसे राज-काज के सम्बन्ध में परामर्श लिया करते थे, अथवा नहीं। वैसे तो जो अन्यमनस्कता जोधपुर नरेश ने उनके जोधपुर प्रवास में दिखलाई उससे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन्होंने स्वामी जी से परामर्श लिया हो।

डा० भारतीय के अनुसंधान से यह स्पष्ट है कि स्वामी जी सत्य को ग्रहण करने के लिये सर्वदा उद्यत रहते थे। जब कभी उनके अपने पूर्व विचार त्याज्य हो जाते थे तो वे किसी प्रकार के पूर्वाग्रह के बिना अपने विचारों को सत्य और न्याय के अनुसार परिष्कृत करने में हिचकिचाते नहीं थे।

आपने यह भी स्पष्ट किया है कि स्वामी जी अपने अनुयायियों में किसी प्रकार की त्रुटि को सहन नहीं करते थे। वे उन्हें सदाचारी और संयमी देखना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने मुन्शी बखतावरसिंह, इन्द्रमणि और कर्नल अलकाट को उनकी त्रुटियों के कारण अपने से अलग कर दिया। वे जोधपुर नरेश जैसे शक्तिशाली राजा का क्षत्रियोचित व्यवहार न देखकर रुष्ट हुए और उन्होंने अपना रोष निर्भीकता से प्रकट किया। उदयपुर नरेश उनके अनन्य भक्त थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु जब उदयपुर नरेश ने उन्हें मूर्तिपूजा का खण्डन न करने के उपलक्ष में एकलिंग जी की गद्दी देने का प्रस्ताव रखा तो स्वामी जी ने कहा "मैं मेवाड़ प्रदेश को तो एक छलाँग में छोड़ सकता हूं, लेकिन भगवान के राज्य को किस प्रकार छोड़ूंगा।'

डा० भारतीय की यह पुस्तक साधक, गुरुजन और शिष्यों के लिये प्रेरणादायी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कहना न होगा गुरुवर विरजानन्द के जीवन पर भी इसी प्रकार के अनुसंधान की आवश्यकता है। क्या डा० भारतीय के द्वारा यह कार्य भी सम्पन्न हो सकेगा ?

—बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

—❀—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम	—	**ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्यम्–खण्ड १, २ भामती व्याख्या**
सम्पादक-भाष्यकार	—	**स्वामी योगीन्द्रानन्द न्यायाचार्य, मीमांसातीर्थ**
प्रकाशक	—	षड्दर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठानम्, वाराणसी
मूल्य	—	६० + ८० = १४० रुपये
पृष्ठ संख्या	—	१३७८

उदासीन सम्प्रदाय के उद्भट् दार्शनिक विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द ने न्याय और वेदान्त दर्शन के प्रौढ़ ग्रन्थों की निर्मल तथा विशद् टीकाएँ की हैं। खण्डनखण्डखाद्य जैसे जटिल दुरूह ग्रन्थ से लेकर चित्सुखी, न्यायामृताद्वैत-सिद्धि जैसे क्लिष्ट ग्रन्थों तक का सम्पादन तथा पाण्डित्यपूर्ण विवेचन-विश्लेषण उन्होंने किया है। विश्वविद्यालयों के आधुनिक परिपाटी से पढ़ने–लिखने वालों को इन ग्रन्थों के प्रांजल तथा टकसाली हिन्दी में टीका-सम्पादनों से बड़ा लाभ हुआ। साहित्यशास्त्र में जैसे आचार्य विश्वेश्वर ने टीका सम्पादन कर अनेक आकर–ग्रन्थों का द्वार अनुसन्धाताओं के लिए खोल दिया, वेदान्त और न्याय के ग्रन्थों में विश्वविद्यालयीय अनुसन्धाताओं का मार्गदर्शन उसी प्रकार स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के ग्रन्थों ने किया। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के विद्वान्, छात्र तथा अनुसन्धाता उनके निकट सम्पर्क में बने रहते हैं। देश से बाहर भी उनके ग्रन्थों की पर्याप्त खपत है और दर्शन क्षेत्र का शायद ही कोई प्रबुद्ध व्यक्ति ऐसा हो जिसने उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय न किया हो।

ब्रह्मसूत्र वेदान्त का प्रतिपादक आधार ग्रन्थ है। आचार्य शंकर ने शारीरकमीमांसाभाष्य लिखकर अद्वैतवेदान्त का प्रतिपादन किया। अद्वयवाद के प्रबल विरोधक भेदाभेदवादी आचार्य भास्कर ने शांकरभाष्य के सर्वथा निराकरण के लिए ब्रह्मसूत्रभाष्य की रचना की—

सूत्राभिप्राय संवृत्या स्वाभिप्रायप्रकाशनात्
व्याख्यातं यैरिदं शास्त्रं व्याख्येयं तन्निवृत्तये।

इसमें जीव और ईश्वर के भेदाभेद उपपादन के साथ जीव को ईश्वर का अंश बताया गया था। आचार्य भास्कर परिणामवाद के भी समर्थक थे। आचार्य भास्कर के मन्तव्यों का युक्तियुक्त खण्डन मैथिली विद्वान् श्री वाचस्पति मिश्र ने भामती टीका में किया। भामती के महत्त्व को नकारते हुए यद्यपि प्रगटार्थकार ने मिश्र जी को 'मण्डनपृष्ठसेवी सूत्रभाष्यायनिभिज्ञः' कहा है तथापि 'भामती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यान कल्पतरु' में मिश्र जी की नीर-क्षीर विवेकी बुद्धि का समर्थन मिलता है। भामतीकार ने मण्डन मिश्र और मीमांसाकारों के मन्तव्यों तथा अनुचित वक्तव्यों का खण्डन करते हुए भी इस बात का ध्यान रखा है कि उनका उचित तथा संगतपक्ष उपेक्षित न हो। मीमांसा के अन्य ग्रन्थ शाबरभाष्य, मीमांसा वार्तिक, बौद्ध ग्रन्थ प्रमाण वार्तिक तथा जैनग्रन्थ आप्तमीमांसा को उद्धृत कर भामतीकार ने शबरस्वामी, कुमारिल भट्ट, धर्मकीर्ति तथा श्रीमन्त भद्र की रचनाओं के प्रति अपनी पूर्ण जानकारी व्यक्त की है। वेदान्त की व्याख्या में भामती एक स्वतन्त्र प्रस्थान है। इसके विपरीत श्री प्रकाशात्म मुनि का 'पञ्च-पादिका विवरण' भिन्न प्रस्थान है। स्वामी योगीन्द्रानन्द जी ने ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड की भूमिका में इस प्रस्थानभेद को स्पष्ट किया है। भामती पर प्राचीन ग्रन्थ श्री अमलानन्द सरस्वती कृत कल्पतरु है। इसमें अनुभूति स्वरूपाचार्य के प्रगटार्थ का खण्डन किया गया है। सम्प्रति कल्पतरु पर दो टीकाएँ प्रकाशित हैं (१) अप्पयदीक्षित कृत कल्पतरुपरिमल तथा (२) श्री लक्ष्मीनृसिंह कृत आभोग। एक अपूर्ण टीका ऋजुप्रकाशिका है, शेष टीकाएँ भी अपूर्ण हैं और पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित हैं। स्वामी जी ने भामती व्याख्या के साथ शांकर भाष्य प्रकाशित कर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। मूलग्रन्थ, भाष्य और भामती का एकत्र आकलन कर लेखक ने भामती की हिन्दी व्याख्या दी है।

परिशिष्ट में आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनी, काशकृत्स्न, जैमिनि बादरायण तथा बादरि नाम घटित २८ सूत्रों की सूची देकर वर्णानुक्रम से बादरायणप्रणीत ब्रह्मसूत्रों की तालिका दी गई है। ग्रन्थ के किस-किस पृष्ठ पर भामती के ११५ श्लोकों में से कौन-कौन उद्धृत हैं, इसका संकेत दिया गया है। तदुपरान्त एक और परिश्रम तथा पाण्डित्यपूर्ण कार्य किया गया है और वह यह कि भाष्य तथा भामती मे उद्धृत वाक्यों के उपजीव्य ग्रन्थ कौन हैं तथा वे वाक्य किस ग्रन्थ के किस प्रकरण से लिए गए हैं, इसका विवरण भी आकलित किया गया है। जैसे भाष्य भामती में पृष्ठ १०२७ पर ज्योतिष्टोम के प्रसंग में 'अग्नये त्वा जुष्ट निर्वपामि' मंत्र उद्धृत है, शोधार्थी यदि इसका मूल संदर्भ देखना चाहे तो उसे तैतिरीय संहिता देखनी होगी। सम्पादक ने परिशिष्ट में इसका संदर्भ (तै०सं० १।१।४।१) दे दिया है। लगभग २ हजार दो सौ छत्तीस वाक्यों के स्रोतग्रन्थ संदर्भ सहित दिए गए हैं। इनमें 'अक्रोधः सर्व-भूतेषु कर्मणा' जैसे १०८ वाक्य ऐसे हैं जिनके मूल स्रोत अभी अज्ञात हैं और नहीं दिए जा सके। वेदान्त के खोजी विद्वानों के लिए यह चुनौती है। आशा है कोई इस ओर भी ध्यान देगा। सम्पादक ने कुछ जगह मात्र ग्रन्थ का उल्लेख किया है उद्धृत श्लोक का संदर्भांक नहीं दिया जैसे पृष्ठ २ पर 'ज्ञानं विराग-मैश्वर्यं' को वायु पुराण का बताया गया है पर संदर्भ नहीं दिया गया। पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३२ पर 'सप्त द्वीपा वसुमती' को महाभाष्य का बताया गया है पर मूल संदर्भ नहीं दिया गया। यही स्थिति पृष्ठ ११५२ पर उद्धृत 'इयमेव जुहूरादित्यः कूर्मः स्वर्गोलोक आहवनीयः' वाक्य की है, इसे छान्दोग्य का कहा गया है पर ठीक स्थान का उल्लेख नहीं। इसी प्रकार पृष्ठ ६४८ पर भामतीकार ने 'येन यस्याभि सम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः' श्लोक बृहट्टीका के नाम से उद्धृत किया है पर इसका भी संदर्भांक उपलब्ध नहीं होता। मूलग्रन्थ में कहीं पर भी संदर्भांक नहीं दिए गए थे। सर्वप्रथम स्वामी जी ने ही इस ग्रन्थ में इन वाक्यों की अकारादिक्रम से सूची बनाकर इनके संदर्भ और संदर्भांक दिए हैं। यह सामग्री जहाँ शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होती है वहाँ स्वामी जी के विशद अध्ययन का परिचय भी देती है। विद्वान् सम्पादक ने सम्पूर्ण ग्रन्थ में उद्धृत ६७ ग्रन्थों के संकेत-विवरण तथा प्रकाशन स्थान भी दे दिए हैं। इनमें वैदिक, पौराणिक तथा वैदिकेतर ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

लेखक की भाषा-शैली विषय का निर्भ्रान्त प्रतिपादन करने में समर्थ है। भामतीकार को स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से भी लेखक ने टिप्पणियाँ दी हैं और उन्हें कोष्ठ में रखकर स्वकीय योजना को मूल ग्रन्थकार की योजना से पृथक् भी कर दिया है। जैसे 'सम्बन्धि शब्द प्रत्यय व्यतिरेकेण' प्रकरण में लेखक ने धर्मकीर्ति का 'शब्दज्ञाने विकल्पेन वस्तु भेदानुसारिणा' श्लोक उद्धृत किया है अथवा विष्णुपुराण (६।३।४), वायुपुराण तथा यजुर्वेद (१७।२) के साक्ष्य पर एकत्वादि संख्या की सूचिका रेखा का अपनी पार्श्ववर्तिनी रेखाओं की अपेक्षा दस, सौ आदि विभिन्न शब्दों से व्यवहृत होने को प्रमाणित किया गया है।[1] भामतीकार केवल कहता है—'तथाऽण्वात्ममनसाम् इति'।[2] पर स्वामी जी इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि निरवयव परमाणु का संयोग संभव नहीं अतएव वसुबन्धु ने छहों दिशाओं के साथ संयोग स्थापित करने के लिए छह अवयवों का आपादन किया है—'षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता' (विंशिका ११)।[3] वैशेषिक दर्शन के खण्डन के संदर्भ मे यह विवेचन है। स्वामी जी ने इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी विषय को स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से लिखा है।

भामती की शैली और प्रक्रिया घोर श्रमसापेक्ष हैं। इस क्लेशबहुल कार्य का सम्पादन और भाष्य का विवेचन-विशदीकरण भी सामान्य कार्य नहीं। इस कार्य को वही सम्पन्न कर सकता था—जो भारतीय दर्शनों के उत्स का पारंगत विद्वान् हो तथा दर्शनों के अविरोधी-विरोधी सम्प्रदायों का विलक्षण

१—ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य भामती विवरण—पृष्ठ ६७२
२— वही —पृष्ठ ६७३
३— वही —पृष्ठ ६७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित हो। स्वामी योगीन्द्रानन्द जी वैदिक-अवैदिक दार्शनिक धाराओं के गहरे जानकार हैं उनका यह ग्रन्थ जहाँ उनके वेदान्त ज्ञान का दिग्दर्शन कराता है, वहाँ उनके अनुसन्धान सापेक्ष दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करता है। इस कृति को हम उनकी प्रतिभा और तलस्पर्शी मेधा, तर्कणा तथा संयोजना का उज्ज्वल निकष मानते हैं।

आशा है, स्वामी जी के अन्य ग्रन्थों की तरह इसका भी पौर्वात्य तथा पाश्चात्य विद्वानों में पूर्ण समादर होगा। जीवभूमि से ब्रह्मभूमि को ओर आरूढ़ होने वालों के लिए भामती सोपान है और इस पर चढ़ा जा सकता है, 'योगीन्द्र' की व्याख्याङ्गुलि पकड़ कर। पुस्तकालयों के लिए तो इसका संग्रह नितान्त अपरिहार्य है।

इस उत्तम ग्रन्थ के आधुनिक वैज्ञानिक शैली पर सम्पादन के लिए स्वामी जी को बधाई।

—डॉ० विष्णुदत्त राकेश

—※—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम — बृहस्पति देवता
लेखक — वेदमार्तण्ड पंडित भगवद्दत्त वेदालङ्कार
प्रकाशक — श्री सरस्वती सदन, नयी दिल्ली-२९
मूल्य — अजिल्द ३० रु०, सजिल्द ४० रुपये

स्वामी दयानन्द के बाद तत्वचिन्तक मनीषियों का ध्यान एक बार फिर वेदों की ओर गया। वेद तथा ब्राह्मण, प्रातिशाख्य, उपनिषद आदि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के प्रकाशन, मुद्रण, भाष्य एवं टीका-टिप्पणियों की जैसे धारा-सी प्रवाहित होने लगी। धीरे-धीरे वेद के एक-एक पक्ष को लेकर विचार चिन्तन का अंकुरण हुआ। इसमें वैदिक धर्म एवं दर्शन पर पूर्व एवं पश्च के मनीषियों की प्रज्ञा से अनेक सुन्दर पुष्प खिले। इसी प्रकरण में वैदिक देवताओं की सुगन्ध ने भी दिग्-दिगन्त को व्याप्त किया।

वैसे तो वैदिक देवों पर इधर अनेकों पुस्तकें प्रकाश में आयीं। स्वयं लेखक की इससे पूर्व ऋभु देवता, विष्णु देवता, सविता देवता आदि भी आ चुकी हैं। उसके बाद यह नयी कृति हमारे सम्मुख है। इन सभी देवों के ऊपर दृष्टिपात् करने से यह स्पष्ट है कि (इन्द्र, अग्नि, रुद्र आदि प्रसिद्ध देवों पर तो बहुतों ने कलम उठाई है) प्रायः लघु देवताओं को ही लेखक ने वरीयता दी है तथा बड़ी सफलता के साथ उनके स्वरूप को चित्रित किया है।

बृहस्पति देवता संहिता और ब्राह्मण इन दो भागों तथा २१ (इक्किस) अध्यायों में विभक्त है। जिनमें बृहस्पति के विभिन्न स्वरूपों को स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ सर्वप्रथम व्युत्पत्ति देते हुए बृहत् शब्द की विस्तृत व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है, जिससे बृहस्पति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकरण में द्यु लोक से भी उसका सम्बन्ध दिखाया गया है। स्मरणीय है कि बृहस्पति पृथिवी स्थानीय देवता है।

द्वितीय अध्याय में बृहस्पति शब्द से एकदम देव-गुरुत्व का स्मरण होना स्वाभाविक है। गुरु का शिष्यों के साथ सम्बन्ध कैसा हो, जो मन, बुद्धि व इन्द्रियों को सशक्त एवं समर्थ बनाकर उन्हें ज्योतिष्मान पथ पर अग्रसर कर सके, यह तभी सम्भव है जब रज व तम को घर्षित करते हुए सत्वगुण को प्राधान्य प्रदान किया जाए। इस सम्पूर्ण लम्बे व कठिन मार्ग में बृहस्पति का निरन्तर मार्ग-निर्देशन ही शिष्य के मन, बुद्धि व इन्द्रियों को वश में लाता है। इसी को बृहस्पति का गो-रक्षण कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक देवों में स्पष्ट रेखाङ्कन सरल कार्य नहीं है। कभी एक कर्म एक ही देवता करता है तो कभी उसी कार्य को अन्य देव के साथ भी जोड़ दिया जाता है। कभी भिन्न प्रतीत होने वाले दो देवता वस्तुतः एक ही होते हैं। यह स्थिति बृहस्पति एवं ब्रह्मणस्पति के बारे में और भी अस्पष्ट है, क्योंकि प्रायः बृहस्पति व ब्रह्मणस्पति के सूक्त तो अलग-अलग पढ़े गये हैं, पर उनकी व्युत्पत्ति व गुण-धर्म समान हैं। इतना साम्य होते हुए कुछ वैषम्य भी हैं, उदाहरणार्थ संहिताओं में बृहस्पति को कहीं भी पुरोहित का विशेषण नहीं दिया गया, परन्तु ब्राह्मणों में उसे "बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितः" ऐतरेय ८.२६ कहा गया है। जबकि ऋग्वेद २-२४-९ (स सन्नयः स विनयः पुरोहितः) में ब्रह्मणस्पति के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया गया है, वैसे यह पद अग्नि के लिए विभिन्न स्थलों पर (ऋग्वेद–१–१–१ आदि) प्रयुक्त किया गया है। इन प्रमाणों से बृहस्पति व ब्रह्मणस्पति की एकता संदिग्ध हो जाती है। साथी ही संहिताओं में ब्रह्म को भी बृहस्पति कह दिया गया है— "ब्रह्म वै बृहस्पति" (मैत्रायणी संहिता–२–२–३)। परन्तु ब्रह्म व बृहस्पति का पार्थक्य सर्वथा स्पष्ट है। इनका यदि और भी स्पष्टीकरण होता तो पाठक के लिए यह विषय और भी सुगम एवं शंकारहित हो सकता था। यद्यपि लेखक ने इस ओर प्रयास किया है।

पुस्तक के चतुर्थ अध्याय का प्रारम्भ भी आदित्य एवं बृहस्पति देवता के सूक्त (अथर्ववेद–४–११) "ब्रह्म जज्ञानं···" से होता है। यह मन्त्र यजुर्वेद–१३–३, सामवेद-१–३२१ में भी प्राप्त होता है। जैसा कि मन्त्र के प्रारम्भिक भाग से ही सूचित होता है इसमें जगत की उत्पत्ति का प्रकरण है। लेखक ने इस मन्त्र के रुक्म धारण में विनियोग का अच्छा स्पष्टीकरण दिया है। तथा इस सूक्त का बृहस्पतिपरक अर्थ भी दिया है जबकि सायणाचार्यादि भाष्यकार केवल आदित्यपरक अर्थ ही करते हैं।

लेखक जब बृहस्पति व गणेश (गणपति) को भी एक ही कहता है तो जिज्ञासा अत्यन्त बढ़ जाती है। लेखक ने "गणानां त्वा गणपति···' आदि मन्त्र (यजुर्वेद–२३–१९) जो अश्वमेध प्रकरण में पढ़ा गया है, का अर्थ का पृथक् किया है। उनके अनुसार अश्व राजा का प्रतिनिधित्व करता है। इससे उन विद्वानों की मान्यता का तो स्पष्ट ही खण्डन हो जाता है जो गणपति को अनार्य देवता कहते हैं। अपने इस भाव की पुष्टि में लेखक ने त्रिचुरापल्ली मद्रास के एक मन्दिर का भित्ति चित्र भी प्रस्तुत किया है। जिसमें राजा पर अश्व आरूढ़ है अर्थात् राष्ट्र में राजा ही अश्व है। जैसे— द्यु-लोक में आदित्य अश्व है।

गणेश व ब्रह्मणस्पति का एकत्व प्रदर्शित करने के लिए लेखक ने अनेक उदाहरण भी दिये हैं जैसे कि ऐतरेय ब्राह्मण–४–४ में कहा गया है कि "गणानां त्वा गणपतिं हवामहे इति ब्राह्मणस्पत्यम्" इसी प्रकार ऋग्वेद–२–२३–१ में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणपति एवं ब्रह्मणस्पति का एक साथ पाठ है। इसी प्रकार मैत्रायणी संहिता-२-२-३ में कहा गया है कि "बृहस्पतिर्गणी, स्वां वा एतद् देवतां भूयिष्ठेनार्पयति सजातैरेनं गणिनं करोति" जिनसे गणेश के स्वरूप पर पुनः विचार आवश्यक हो हो जाता है। इस पक्ष में कुछ अन्य प्रमाण भी लेखक ने प्रस्तुत किये हैं। यथा—बृहस्पतिं हवाम हे विश्वतः सगणं वयम्। ...मैत्रायणी संहिता-४-१२-१; बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये ...ऋग्वेद-५-५१-१२। इससे देवों के अध्ययन में एक नया मोड़ आ सकता है। इसी प्रकरण में रुद्र के गणपतित्व का भी स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है पर वह और अधिक व्याख्या की अपेक्षा करता है। क्योंकि रुद्र, वसु और आदित्य तो गण देवता हैं किन्तु इन गण देवों में बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति की चर्चा कहीं नहीं प्राप्त होती।

इन्द्र के साथ बृहस्पति के द्वारा भी असुर विनाश का कार्य होता है। असुरों के साथ वाक्-युद्ध में बृहस्पति का महत्त्व स्पष्ट ही है। बहुत से मन्त्रों में इस वाक् युद्ध का वर्णन हमें प्राप्त होता है। यदि बृहस्पति व ब्रह्मणस्पति को एक मानकर हम पुरोहित (विशेषण) को राजा इन्द्र के साथ संग्रामों में भाग लेते हुए भी देख सकते हैं। पुरोहितों का सग्राम में राजा का साथ देना कोई नयी बात नहीं है। वैसे ब्रह्मणस्पति भी इन आसुरी शक्तियों को समाप्त करने के लिए धनुष धारण करता है (ऋग्वेद–२–२४–८) इसमें ऋत् की ज्या है जो स्पष्ट ही अज्ञान या तम पर ज्ञान या प्रकाश की विजय की सूचक है। इसके अतिरिक्त शम्बर (ऋग्वेद—२–२४–२) पणि, (ऋग्वेद—२–२४–६) का धर्षण भी वे करते हैं। इतना ही नहीं त्रिपुर का भी विनाश करते हैं—"घ्नन वृत्राणि विपुरोदर्दरीति" (ऋग्वेद—६–७३–२) जो रुद्र के लिए प्रसिद्ध है।

ब्रह्म को बृहस्पति मानकर ब्रह्मजाया अर्थात् बृहस्पति की पत्नी एवं बृहस्पति के पशुओं की बड़ी सुन्दर एवं विचारपूर्ण आध्यत्मिक व्याख्या लेखक द्वारा प्रस्तुत की गयी है। "......... तेनजायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुहवं न देवाः ।।"

बृहस्पति के वशा सम्बन्धी मन्त्रों की व्याख्या करके वशा के एक नवीन अर्थ की उद्भावना की गई है। जो सायण या सातवलेकर आदि की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होती है। वशा को योगियों का ज्योतिष्पुञ्ज (Aura) कहा गया है। जैसा कि अथर्ववेद १०–१०–१९ करता है—

> ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि।
> ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ।। तथा
> "वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः"

इत्यादि से वशा का गोत्व जाति का प्राणि होना खण्डित हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पति का क्रोञ्च पक्षी से सम्बन्ध 'क्रोञ्चः बृहस्पतेः' छान्दोग्योपनिषद्-२-२२-१ तथा प्रसंगवश निरुक्त में वर्णित शन्तनु एवं देवापि की कथा का स्पष्टीकरण भी लेखक ने किया है। इसके साथ ही बृहस्पति का फालमणि से सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। यहाँ अन्य भाष्यकारों द्वारा स्वीकृत 'खेत' अर्थ को स्वीकार न करते हुए उसका अर्थ दिव्यगुणयुक्त अन्न किया है।

बृहस्पति के बारे में वर्णन करते हुए १६ (सोलह) वें अध्याय में पौरस्त्य तथा पाश्चात्य विद्वानों की बृहस्पति के बारे में सम्मतियाँ दी गई हैं। जो तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सायण, अरविन्द, दयानन्द, मैक्डानल आदि प्रमुख हैं। यहाँ तक प्रथम भाग समाप्त हो जाता है। शेष ५ (पाँच) अध्याय ब्राह्मणों पर आधारित हैं।

पुस्तक के १७ (सत्रह) वें अध्याय में लेखक ने बृहस्पति व ब्रह्मा का एकत्व सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसलिए बृहस्पति ही यज्ञ का ब्रह्मा है, और ब्रह्मात्व से ही वह यज्ञ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। १९ (उन्नीस) वें अध्याय में प्रजापति के अपनी दुहिता का पीछा करने की तथा रुद्र द्वारा विद्ध होने एवं प्राशित्र भक्षण की क्रिया का सुन्दर सामञ्जस्य किया है, उसकी व्याख्या भी लेखक की अपनी है। इसी प्रकार वाजपेय यज्ञ का भी बृहस्पति से सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

इन २१ (इक्कीस) अध्यायों के बाद अन्त में बृहस्पति सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन करके उनकी व्याख्या की गई है, जिससे पुस्तक और भी महत्वपूर्ण हो गई है। पुस्तक देखते ही अपनी ओर आकृष्ट करती है। कागज़ एवं छपाई सुन्दर है। मुद्रा राक्षसों का अभाव अत्यन्त सन्तोषजनक है। अतः शुद्धि-पत्र लगाने की आवश्यकता नहीं है तथा पाठक के लिए कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। इसके लिए लेखक व प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। विषय की विशदता एवं गम्भीरता के साथ ही लेखक का चिन्तन अपनी स्पष्ट एवं स्थायी छाप छोड़ता है। एक नवीन विचार-चिन्तन की प्रेरणा देने में भी पुस्तक सक्षम है।

—डॉ॰ भारतभूषण विद्यालंकार
रीडर, वेद-विभाग

—❀—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ-मण्डल

१—डॉ० मानसिंह	— प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
२—डॉ० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	— अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
३—श्री सदाशिव भगत	— अध्यक्ष, अंग्रेजी-विभाग
४—श्री ओम्प्रकाश मिश्र	— अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग
५—श्री विजयपाल सिंह	— अध्यक्ष, गणित-विभाग
६—डॉ० जयदेव वेदालंकार	— अध्यक्ष, दर्शन-विभाग

सहायक-सम्पादक

१—डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार
२—श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी
३—डॉ० ज्ञानचन्द्र शास्त्री
४—डॉ० भगवानदेव पाण्डेय

छात्र-सम्पादक

१—श्री धर्मवीर विद्यालंकार
२—श्री भोपालसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियदर्शिनी इन्दिरा जी की सजल स्मृति में

हो गया इतिहास विस्मित—स्तब्ध उस दिन तव निधन पर।

वियत व्याकुल, भ्रान्त भू, पागल पवन उस पल अचानक,
नीर निष्क्रिय, नग विनत, शीतल बनी उत्तप्त पावक,
काल आकुल हो गया सहसा तुम्हारे शुचि मरण पर ॥

राष्ट्र सेवा हित समर्पित तुम रहीं थीं बालपन से,
प्राणपण से निरत थीं देशार्थ तन, मन और धन से,
युग युगों लज्जित रहेगा युग, बधिक के आचरण पर ॥

धूल में ही मिल गया तन धूलिमय ; आत्मा अमर है,
आज मर कर भी तुम्हारी कीर्ति तो शाश्वत अजर है,
जग चकित था देखकर तव मृत्यु के प्रमुदित वरण पर ॥

—डा० जगदीश वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सितम्बर, १९८८

प्रह्लाद

प्राच्यविद्याओं की
त्रैमासिक शोध-पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डा० विष्णुदत्त राकेश

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

संयुक्त-सम्पादक

डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

सितम्बर – १९८८

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक
श्री रामचन्द्र शर्मा
आई०ए०एस० (सेवानिवृत्त)
कुलपति

संरक्षक
श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रकाशक
डा० वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव

व्यवस्थापक
जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोफ़ेसर के० सच्चिदानन्द मूर्त्ति, उपाध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को शाल भेंट करते हुए कुलपति प्रोफेसर आर०सी० शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षान्त के अवसर पर प्रख्यात शिक्षाशास्त्री डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, भू०पू० परिद्रष्टा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर 'वैदिक साहित्य, संस्कृति एवं समाजदर्शन' नामक ग्रन्थ का विमोचन करते हुए मुख्य अतिथि श्री वी०एस० देशपाण्डे, मुख्य न्यायाधीश (से०नि०) उच्च न्यायालय, दिल्ली। साथ में खड़े हैं (दाएँ से) श्री सोमनाथ मरवाह परिद्रष्टा, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार तथा कुलपति श्री आर०सी० शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर० सी० शर्मा
आई०ए०एस० (अव०प्रा०)
कुलपति

कार्यालय : ६४८
निवास : २३५
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार–२४९ ४०४

दिनांक : २५-७-१९८८

संदेश

प्रिय आचार्यगण एवं ब्रह्मचारियों !

विश्वविद्यालय के नवसत्र के प्रारम्भ होने पर आपका स्वागत करता हूँ। आशा है, आप लोग इस राष्ट्रीय संस्था के संस्थापक कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बताए मार्ग पर चल कर, इस संस्था के सम्मान की वृद्धि करने में तन-मन से तत्पर होंगे। नैतिक दायित्व, सामाजिक हित और निजी जीवन के निर्माण की प्रेरणा विवशता से नहीं, अन्दर से उद्भूत होनी चाहिए। मनुष्य के निजत्व की चिन्ता से बढ़कर मानवमात्र की शक्तिमत्ता की खोज एक बड़ा लक्ष्य है। विशाल ज्ञान, विराट चिन्तन, सार्वभौम धर्म, उज्ज्वल चरित्र, कर्मठता और अडिग निश्चय, व्यक्ति को महान बनाते हैं। अपने देश, समाज और जनसमूह की आशा-आकाँक्षाओं के अनुरूप अपने को सक्षम बनाना ही शिक्षा का सर्वोच्च ध्येय है। महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, महात्मा श्रद्धानन्द, महर्षि अरविन्द, महाकवि टैगोर और महामना मालवीय जी ने भारतीय जीवन-दर्शन के जिन सूत्रों की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकृष्ट किया है, उनमें सांस्कृतिक अध्यात्म, सार्वभौम चेतना, राष्ट्रप्रेम और निजी जीवन का उन्नयन प्रमुख स्थान रखते हैं। मेरी इच्छा है कि साम्प्रदायिक, भाषिक और राजनीतिक एकांगिता से मुक्त होकर, आप अपने जीवन में शाश्वत मानवमूल्यों और आर्य-संस्कारों को संजोएँ। विश्वविद्यालय में आकर भी यदि 'विश्व-चेतना' का उदय न हो सका तो समझ लीजिये सारा श्रम व्यर्थ हो गया।

वेद भगवान का यह उपदेश सदैव याद रखिए—हम सबके साथ सहयोग की भावना से काम करें। हमारे हृदय में समता का भाव विकसित हो। हमारा चिन्तन, संकल्प और क्रियाकलाप एक लक्ष्य के लिए हो। हमारे जीवन में देश, जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग तथा भाषा आदि की संकीर्णताएँ न उत्पन्न हों। हमारे राष्ट्र और समाज में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक सम्पन्नता हो। इस सम्पन्नता में सब भागीदार हों। सब सुखी और नीरोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हों। हम रूढ़िमुक्त समाज के उत्थान और अपने जीवन को महान बनाने के लिये सच्चे ज्ञान की खोज में लगे रहें—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।

आप लोगों के लिए मंगलकामनाएँ। विश्वास करता हूँ कि आप लाग दत्तचित्त होकर पठन-पाठन के कार्य में जुट जायेंगे तथा इस वर्ष पहले वर्षों की अपेक्षा और भी अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त करेंगे।

आहिस्तः ही गुनगुनाओ मेरे अश्आर,
डर है न मेरे ख्वाब कुचल जाएँ कहीं।

भवदीय

(रामचन्द्र शर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* विषय सूची *

क्रम विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—वैदिक वन्दना		१
२—सम्पादक की कलम से	डा० विष्णुदत्त राकेश	२
३—वाल्मीकि रामायण का अङ्गी—रस	डा० महावीर	६
४—वृक्षों में जीव और हिंसा : एक विवेचन	डा० सत्यव्रत राजेश	१५
५—डा० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	डा० रामप्रकाश अग्रवाल	२४
६—सूरदास का अवदान	प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी	३१
७—इतिहासज्ञ श्री डा. सत्यकेतु जी विद्यालंकार	डा० प्रभात शास्त्री	३४
८—प्राचीन भारत की मुद्राएँ	डा० जबरसिंह सेंगर	३६
९—अस्तित्ववाद	डा० यू०एस० बिष्ट	३९
१०—हिमालय के स्तनपोषी जन्तु	डा० बी०डी० जोशी	४७
११—श्रद्धानन्द वीथिका	श्री ब्रजेन्द्र जैरथ	६०
१२—राष्ट्रभाषा का स्वरूप और आयाम	डा० विष्णुदत्त राकेश	६२
१३—निकष पर (पुस्तक-समीक्षा)	डा० विष्णुदत्त राकेश	६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षान्त-समारोह के उपलक्ष में ध्वजारोहण के अवसर पर खड़े हैं (बाएँ से) कुलाधिपति डा० सत्यकेतु, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री आर०सी० शर्मा, मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे, प्रो० रामप्रसाद, आचार्य तथा कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोड़ा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वन्दना

ऊँ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः
देवेभिर्मानुषे जने।

ऋ० ६, १६, १

अन्वय—अग्ने ! त्वं यज्ञानां होता (असि)। विश्वेषां हित: देवेभिः मानुषे जने।

अर्थ— (अग्ने ! त्वं यज्ञानां होता) हे ज्ञानमय जगदीश्वर तू यज्ञों का—सभी श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करने वाला है, सभी श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा करने वाला है, तेरी अनुकम्पा से ही सब उत्तम कर्म सम्पन्न होते हैं। (विश्वेषां हितः) तू सदा सब का हित करने वाला है वा सब के भीतर विद्यमान रहने वाला है। (देवेभिः मानुषे जने) तू अपने दिव्य गुण कर्म स्वभावों के साथ मननशील मानवों में आ विराजमान हो—अर्थात् उपासकजनों में साक्षात् अनुभव में आ।

—श्री रामप्रसाद वेदालंकार

ज्ञानपुंज हे देव हुताशन, श्रेष्ठ कर्ममाला कर्त्ता,
तुम अनंत यज्ञों के प्रेरक, जीवों के भर्त्ता, हर्त्ता।
भूतमात्र हितसाधन कर्त्ता, करुणाकर जग के स्वामी,
मननशील साधक के अनुभव, धर्ममार्ग के अनुगामी।
इस अगाध अज्ञान तिमिर में ज्योति तरी दे पार करो,
चिदानंद हे अन्तर्यामी, प्रेम-सुमन स्वीकार करो।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८८वाँ दीक्षान्त

१६ अप्रैल' ८८ को गुरुकुल विश्वविद्यालय में वैदिक परम्परागत रीति से ८८वाँ दीक्षान्त-समारोह सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर शिक्षाविद् कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने वेद, कला और विज्ञान के स्नातकों की उपाधियाँ प्रदान कीं। पी-एच०डी० उपाधि से अलंकृत होने वाले शोधार्थी भी उपस्थित हुए। इस समारोह में दीक्षान्त-भाषण देने दिल्ली उच्च न्यायालय के अवकाशप्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री वी०एस० देशपाण्डे पधारे। दीक्षान्त-संस्कार देखने के लिए सभागार में उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए श्री देशपाण्डे ने कहा कि हमारे संविधान का मूलतत्व भारतीयता है क्योंकि भारतीयता ही देश के विभिन्न धर्मों और वर्गों के लोगों के लिए एकता का एक सूत्र है। राष्ट्रीयता, एकता और अखण्डता के सूत्र में हम अपने गौरवपूर्ण इतिहास और साँस्कृतिक परम्पराओं की विरासत के बल पर ही बँधे हुए हैं। इस एकता के सम्पादन में धर्म की बड़ी भूमिका रही है। इसके लिए धर्म के संविधानसम्मतरूप और भारतीय धर्म साधनाओं और धारणाओं की मूलभावना को समझ लेना जरूरी है।

विद्वान् न्यायाधीश ने कहा कि सत्यबुद्धि से प्रेरित और ग्राह्य विवेक ही धर्म है, अत ऐसा धर्म भारतीय संविधान में निहित एकात्मता की भावना का ही पोषक है। यदि हम अपनी शिक्षा का उपयोग इसी मूलभूत ऐक्य की प्राप्ति के लिए कर सके तो नवदीक्षित स्नातक मानवीय चेतनाधारा के अविभाज्य अंग बनकर अपने नवोदित व्यक्तित्व से समाज का भला कर सकते हैं।

दीक्षान्त-भाषण से पूर्व गुरुकुल का ध्वज आगे रखकर नवस्नातकों की शोभायात्रा निकाली गई जिसमें कुलसचिव, संन्यासीवृन्द, गुरुकुल के परिद्रष्टा, कुलाधिपति, मुख्य अतिथि, कुलपति, आचार्यगण तथा पूर्वस्नातकों ने भाग लिया। मंच पर दीक्षान्तयज्ञ सम्पन्न हुआ जिसमें कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री शर्मा तथा मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे सहित शिक्षापटल, कार्यपरिषद्, शिष्टपरिषद् तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओं के अधिकारियों ने भाग लिया।

दीक्षान्तभाषण से पूर्व स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज के शिष्य, अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर पर वैदिक साहित्य, संस्कृति, समाजशास्त्र, दर्शन, आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारधारा और होमियोपैथी के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथों के लेखक, राष्ट्रपति द्वारा समादृत संस्कृत विद्वान् एवं पूर्व साँसद, कुलपति और परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार को परिद्रष्टा श्री मरवाह ने गुरुकुलीय शिक्षा के प्रतीकपुरुष के रूप में उत्तरीय प्रदान कर सम्मानित किया। डा० सत्यव्रत के सम्मान में प्रकाशित तथा उत्तर एवं दक्षिण भारत के उच्चकोटि के विद्वानों की प्रशस्तियों से अलंकृत एक बृहत् अभिनन्दन ग्रंथ 'वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन' का विमोचन माननीय न्यायाधीश श्री देशपाण्डे ने किया। इस ग्रंथ के प्रेरक कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा तथा संरक्षक डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा श्री सोमनाथ जी मरवाह हैं। पद्मभूषण डा० शिवमंगलसिंह सुमन, पद्मभूषण डा० अमृतलाल नागर, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के श्री आर० शौरिराजन एवं कर्नाटक-बंगलौर विश्वविद्यालय के संकायाध्यक्ष डा० सरगू कृष्णमूर्ति इस ग्रंथ के परामर्शमण्डल के सदस्य हैं। ग्रंथ का सम्पादन गुरुकुल के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० विष्णुदत्त राकेश ने किया है। न्यायमूर्ति श्री देशपाण्डे ने करतल ध्वनि के बीच यह महत्वपूर्ण ग्रंथ डा० सत्यव्रत जी को समर्पित किया। प्रो० सिन्हा के सम्पादन में प्रकाशित, विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोधप्रबंधों के साराँशों का संकलन 'शोध सारावली' के नाम से परिद्रष्टा श्री मरवाह जी द्वारा विमोचित हुआ। उक्त दोनों ग्रंथ स्वामी श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र से प्रकाशित हुए हैं। कुलपति श्री शर्मा ने हाल ही में उक्त केन्द्र की स्थापना विश्वविद्यालय में की है। इसके लिये अनुदान आयोग के अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं।

अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष डा0 के0 सच्चिदानंद मूर्ति गुरुकुल पधारे

भारतीय दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् तथा आंध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयर के पूर्व दर्शन विभागाध्यक्ष एवं सम्प्रति अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष डा० के० सच्चिदानंद मूर्ति २५ जून को अपनी उत्तराखण्ड यात्रा के दौरान गुरुकुल पधारे। डा० मूर्ति ने तत्त्ववाद, दर्शन, धर्म और राजनीतिक विचारधारा के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके ग्रन्थों में 'रेवीलेशन एंड रीजन इन अद्वैत वेदांत स्टडीज़ इन द प्राब्लम्स ऑफ पीस', 'मेटाफिजिक्स, मैन एण्ड फ्रीडम', 'इण्डियन फारन पोलिसी' 'द इन्डियन स्प्रिट', 'तेलगू इनसाइक्लोपीडिया', 'फिलोसफी एण्ड रिलीजन', 'समकालीन भारतीय दर्शन', 'करेंट ट्रेंड्स इन इन्डियन फिलासफी (K.R. Rao के सहयोग से) तथा 'रीडिंग्स इन इण्डियन हिस्ट्री, पोलिटिक्स एण्ड फिलासफी' प्रमुख हैं।

प्रो० मूर्ति का पुस्तकालय सभागार में 'वैदिक साहित्य में अद्वैत' विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुआ। व्याख्यान से पूर्व प्रो० मूर्ति को कुलपति श्री शर्मा ने उत्तरीय प्रदान कर सम्मानित किया। समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व परिद्रष्टा तथा भारतीय चिंतन के वयोवृद्ध विद्वान् डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने की। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने विद्वान् वक्ता का आभार स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय की उपलब्धियों का परिचय दिया तथा डा० मूर्ति के आगमन को शुभलक्षण माना। व्याख्यान से पूर्व कुलसचिव सहित विश्वविद्यालय के वरिष्ठ शिक्षकों ने डा० मूर्ति का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

पद्मश्री डा० सच्चिदानंद राउतराय को ज्ञानपीठ सम्मान मिला

आधुनिक उड़िया कविता की गंगा को परम्परावादी और नवोत्थानवादी शिखरों से उतार कर वस्तुपरक अभिव्यंजना, मुक्त छंद और बिम्बों की धरती पर नई-नई शैलियों में प्रतिष्ठित करने का कार्य डा० सच्चिदानंद राउतराय ने किया। कथासाहित्य, काव्यनाटक, आलोचना और अनुसंधान के क्षेत्र में उनका योगदान अपूर्व है। वामपंथी विचारधारा के कारण भारतीय भाषाओं के प्रगतिशील साहित्यकारों में उनका विशेष स्थान है।

डा० राउतराय का जन्म १९१६ में पुरी जिलान्तर्गत खोर्धा निकटवर्ती गुरुजंग ग्राम में हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में उनकी पहली कविता छपी और सोलह वर्ष की अवस्था में उनका प्रथम कवितासंग्रह 'पाथेय' प्रकाशित हुआ। उनकी दूसरी रचना 'पाण्डुलिपि' ने उड़िया कविता को नवीन दिशा दी। इस संग्रह की भूमिका तथा 'कविता १९६२' की भूमिकाओं से डा० राय के काव्यशास्त्रीय विवेचन का पता चलता है। 'साहित्य विचार', 'साहित्य मूल्यबोध' तथा 'आधुनिक साहित्यर केतक दिग' उनके अन्य आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। उनके उपन्यास मनोविश्लेषण प्रधान हैं। फ्रायड और युंग के मन्तव्यों से बुना हुआ उनका कथासाहित्य, उड़िया कथासाहित्य में एक नई मानसिकता लेकर आया। 'चित्रग्रीव' उपन्यास इसी मनोभूमि की रचना है। यही प्रवृत्ति उनके काव्य 'अभियान' और 'पल्ली श्री' में भी दिखाई पड़ती है। क्षयग्रस्त समाज की विषमता और संवेदना, मानवीय आक्रोश और मानवीय न्यायपूर्ण अधिकारों की संचेतना डा० राय की रचनाओं के मूलस्वर हैं। ग्रामीण जन-जीवन और उखड़े परिवेश को अपनी कहानियों में जीवंत रूप देकर डा० राय ने उत्पीड़ित सर्वहारा के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न उठाया है। आधुनिक आलोचक डा० राय को शुद्ध कविता का हिमायती मानते हैं। पद्मश्री से विभूषित, उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी डा० राउतराय इस वर्ष ज्ञानपीठ से सम्मानित हुए। हार्दिक बधाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा0 सत्यकेतु विद्यालंकार और डा0 लक्ष्मीनारायण दुबे को आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार।

गुरुकुल कांगड़ी के प्रारंभिक युग के आचार्य श्री गोवर्धन शास्त्री की स्मृति में संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर प्रतिवर्ष प्रशस्तिपत्र, उत्तरीय तथा एक सहस्र रुपये की सम्मान-राशि प्रदान कर, आर्य विचारधारा के विद्वानों का सम्मान करती है। इस वर्ष गुरुकुल के दीक्षान्त पर सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी रीडर डा० लक्ष्मीनारायण दुबे को यह सम्मान परिद्रष्टा श्री सोमनाथ जी मरवाह के करकमलों द्वारा समर्पित किया गया। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने प्रशस्तिपत्र देकर दोनों मनीषियों के कृतित्व का परिचय विद्वानों को दिया। स्मरण रहे, डा० सत्यकेतु जी ने कई खण्डों में आर्यसमाज का वृहद् इतिहास लिखकर तथा डा० दुबे ने 'हिन्दी साहित्य में आर्यसमाज की अभिव्यक्ति' लिखकर आर्यसमाज और साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की है। इस अवसर पर आचार्य गोवर्धन शास्त्री के पुत्र श्री बलभद्रकुमार हूजा, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय विशेषरूप से उपस्थित थे।

पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार का निधन

गुरुकुल के यशस्वी स्नातक तथा वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार का निधन अपूरणीय क्षति है। पण्डित जी ने १९३५ में वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की थी। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में ६-७ वर्ष कार्य करने के बाद आप गुरुकुल के वेदानुसंधान विभाग में स्थानान्तरित हुए। १९७६ तक वेदाध्यापन, अनुसंधान तथा गुरुकुल पत्रिका का सम्पादन करते हुए सेवामुक्त हुए तथा बाद में विशेष योजना के तहत 'शास्त्र चूड़ामणि' के लिए पुनः विश्वविद्यालय में कार्यरत हुए। आपकी पुस्तकों में वैदिक साहित्य की जटिल एवं दुरूह कल्पनाओं को सुगम और सुबोध रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेद की निष्काम सेवा में आपने अभावग्रस्त होते हुए भी धनोपार्जन को महत्व नहीं दिया। 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगोवेदोऽध्येयोज्ञेयश्च'—इस शास्त्रवचन को आपने बड़ी सच्चाई के साथ जीवन में उतारा।

संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के सम्मान के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश शासन तथा पुरुषोत्तमदास मेमोरियल ट्रस्ट हैदराबाद से भी आपको सम्मान मिला। आपके पुरस्कृत ग्रंथों में वैदिकस्वप्न विज्ञानम्, ऋषि रहस्य, विष्णु देवता तथा सविता देवता के नाम विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से उल्लेखनीय हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर तथा डा० सम्पूर्णानन्द जी आपके ग्रंथों को बड़े आदर के साथ देखते थे। इसके अतिरिक्त वेद-विमर्श, वैदिक अध्यात्म विद्या, बृहस्पति देवता, ऋभु देवता, ऋषिदेव निर्वचन तथा रुद्र देवता ग्रंथों ने भी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

एक वेदविद्याविशारद् पण्डित के रूप में ख्यातिप्राप्त, वैदिक विषयों के वैज्ञानिक भाष्यकार और गुरुकुलीय परम्परा के सच्चे आदर्श का अपने बीच से उठ जाना नियति का क्रूर उपहास ही है। पण्डित जी शुभ-संकल्पों के वसोर्धारा होम से अपने शिवतनू का प्रीणन करते रहे और अब अग्निहुत होकर वह तेजरूप हो गए हैं। पण्डित जी का कर्तृत्व अमर है। हम पण्डित जी को नतशिर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

हिन्दी अध्ययन शिविर

९ मार्च ८८ को अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के हिन्दी अध्येता छात्र-छात्राओं का एक अध्ययनदल केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार के शोधसहायक श्री अश्विनीकुमार के साथ गुरुकुल पधारा। इसमें आसाम, उड़ीसा, इम्फाल, अरुणाचल, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु के प्रतिनिधि प्रमुख थे। हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० राकेश ने इन विद्यार्थियों की हिन्दीअध्ययन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया। इस दल ने तीन दिन परिसर में रहकर विश्वविद्यालय की गतिविधियों का अवलोकन किया। इस दल को लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी आचार्य एवं विभागाध्यक्ष डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित तथा आचार्य प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार ने सम्बोधित किया। डा० दीक्षित ने हिन्दी विभाग के निमंत्रण पर 'भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता' विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया।

पद्मभूषण पण्डित अमृतलाल नागर को शिखर सम्मान

हिन्दी के कालजयी उपन्यासकार पद्मभूषण पण्डित अमृतलाल नागर को बिहार सरकार ने अपना सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'डा० राजेन्द्रप्रसाद शिखर सम्मान' पटना में प्रदान किया। मुख्यमन्त्री श्री भगवत झा आज़ाद ने उत्तरीय तथा एक लाख रुपये की राशि प्रशस्तिपत्र सहित श्री नागर को आदरपूर्वक समर्पित की। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी श्री नागर को 'भारत-भारती' पुरस्कार देने की घोषणा की है। एक लाख रुपये की राशि का यह पुरस्कार प्रदेश का सर्वोच्च पुरस्कार है जो श्री नागर से पूर्व श्रीमती महादेवी वर्मा तथा श्री जैनेन्द्रकुमार को समर्पित किया जा चुका है। श्री नागर को इस अवसर पर हार्दिक बधाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नागर का जन्म १७ अगस्त १९१६ को आगरा में हुआ था। गुजराती ब्राह्मण होने के कारण श्री नागर में आस्था, कला, सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण और उदारता कूट-कूट कर भरी हुई है। खद्दर के श्वेत परिधान में एक तेजस्वी किन्तु अत्यंत शालीन और सरल व्यक्तितत्व का नाम है नागर। ऐसा व्यक्तित्व जिसमें ढाई आखर प्रेम की सुगंध है, विवेक पर आधारित धर्म की मुस्कान है तथा तड़क-भड़क और रूढ़ियों से दूर साहित्यिक उदारता है। मुक्तमना नागर जी पुरातत्व और लोककलाओं में पारंगत हैं। संगीत और रंगमंच से उनका गहरा लगाव है। नाटक, संगीत, पत्रकारिता, फिल्मीलेखन तथा कथालेखन उनके साहित्यिक व्यक्तितत्व में घुलमिल गए हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व 'सुनीति', 'चकल्लस' तथा 'अल्लाह दे' जैसी पत्रिकाओं का सुरुचिपूर्ण सम्पादन किया। 'चकल्लस' हास्यव्यंग्य की साप्ताहिक पत्रिका थी, जिसकी प्रशंसा करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कहा था — इसे देखकर मेरा मुर्दा दिल भी जिन्दा-सा हो उठा। प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा भगवतीचरण वर्मा के समान श्री नागर फिल्म सिनेरियो लेखक के रूप में बम्बई गए। १९४० से ४ तक कोल्हापुर, बम्बई तथा मद्रास के फिल्मक्षेत्रों में काम किया। तदुपरान्त हिन्दी उपन्यासों के लेखन में प्रवृत्त हुए। लखनऊ आकाशवाणी पर ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर कार्य किया। स्वाभिमानी होने के कारण स्वराज के काले साहबों की नौकरी छोड़नी पड़ी। साहित्य अकादमी ने आपके उपन्यास 'अमृत और विष' को पुरस्कृत किया।

आपकी रचनाओं में महाकाल, सेठ बाँकेमल, बूँद और समुद्र, अमृत और विष, सुहाग के नूपुर, शतरंज के मोहरे, सात घूँघट वाला मुखड़ा, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हँस, खंजन नैंन, नाच्यो बहुत गुपाल, ये कोठेवालियाँ, गदर के फूल प्रसिद्ध हैं। युगावतार और बात की बात आपकी नाट्यरचनाएँ हैं। कहानी संकलनों में नवाबी मसनद, तुलाराम शास्त्री, पीपल की परी, मेरी प्रिय कहानियाँ तथा पाँचवां दस्ता और सात अन्य प्रसिद्ध हैं। संस्मरण, निबंध और बालसाहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखे हैं। बूँद और समुद्र में नगर के समग्र जीवन के फलक पर बनते-बिगड़ते सम्बन्धों और मानवीय संवेदनाओं के विपुल बहुरंगी चित्र अंकित किए गए हैं। व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों के प्रतीकार्थ पर आधारित यह उपन्यास हिन्दी आलोचकों की दृष्टि में नागर जी की कालजयी रचना है। डा० रामविलास शर्मा ने इस उपन्यास के ताई चरित्र को भारतीय नारी का ऐसा सहज संस्कार माना है जिसके चित्रण से हिन्दी उपन्यास को उच्चतम स्तर प्राप्त हुआ है। ऐतिहासिक चेतना के प्रत्यंकन और सांस्कृतिक विश्लेषण की सूझ-बूझ 'एकदा नैमिषारण्ये' में मिलती है। लेखक ने नैमिषारण्य को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संवाहक केन्द्र माना है। नैमिष आन्दोलन को वह वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञान तथा मानवीय संवेदना का अन्तिम रूप से समन्वयकर्ता मानते हैं। विरोधी संस्कृतियों का एकतासूत्र नैमिषारण्य की पुराण संस्कृति में उपलब्ध है और यह काम मुख्यतः एक विराट् राष्ट्रीयदृष्टि से किया गया था। भारतीय समाज का एक लम्बा इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागर जी की रचनाओं में निहित है। चाहे उनके उपन्यास हों या कहानियाँ, नाटक हों या प्रहसन, रेखाचित्र हों या संस्मरण—उनका साहित्य यथार्थ जीवन का साहित्य है, भोगे हुए त्रासद और मधुर, संघर्षरत और संघर्षोन्मुख जीवनक्षणों का साहित्य है; पर आस्था और विश्वास की एक ऐसी अखण्ड पूँजी भी उनके पात्रों के पास है जो विषमता के विष में जिजीविषा का अमृत पिलाते रहते हैं और मानवीयशक्ति को जीवित रखते हैं, टूटने नहीं देते। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न, साम्यवादी चेतना से सम्युक्त, मनोवैज्ञानिक पकड़ तथा शिल्प और भाषागत प्रयोगों से सवलित श्री नागर की कथाकला राष्ट्रीय जागरण और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में शीर्षस्थ स्थान रखती है। नवयुग के परिप्रेक्ष्य में एक स्वस्थ समन्वित दृष्टिकोण का सम्प्रेषण ही उन्हें अभीष्ट है। श्री नागर की रचनाएँ देश और देश से बाहर लोकप्रिय हुई हैं। अनेक सम्मान, पुरस्कार और प्रशंसाओं से चर्चित-अर्चित श्री नागर दीर्घजीवी हों और इसी प्रकार अनवरत साहित्यसाधना में संलग्न रहें।

—विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षान्त-यज्ञ सम्पन्न करते हुए (बाएँ से) कुलाधिपति डा० सत्यकेतु, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री शर्मा, मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे, कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोड़ा तथा प्रो० रामप्रसाद आचार्य एवं उपकुलपति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षान्त-समारोह (१९८८) के अवसर पर उपाधि प्राप्त्यर्थ स्नातकों की शोभा-यात्रा का दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि रामायण का अङ्गी-रस

—डा० **महावीर,** एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच.डी.
प्राध्यापक, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण विश्वसाहित्य का अक्षय कोश है, काव्य-गुणों का आकर है, भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल दीपक है। इस रामायण–महासागर से अनेकानेक कवियों की कल्पनाओं के मेघ बनकर उठे और साहित्य-गगन में छा गये।

लौकिक काव्य में रस की प्रथम उद्भूति रामायण में ही हुई थी, वह रस जो काव्य का जीवन है, उसकी आत्मा है। प्रसिद्ध काव्यशास्त्रियों के अनुसार साहित्य में रस की सर्वप्रथम उद्भावना करने का श्रेय आदिकवि को ही प्राप्त है।

किसी भी काव्य का मूल्याङ्कन करते समय रस-योजना की दृष्टि से आलोच्य कृति की समीक्षा अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण होती है। फिर वाल्मीकि-रामायण में तो रसों की मन्दाकिनी प्रारम्भ से अन्त तक प्रवहमान है। सभी रसों की मञ्जुल योजना में महर्षि पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्रत्येक महाकाव्य अथवा नाटक में श्रृङ्गार अथवा वीर रस को अङ्गी रूप में एवं अन्य रसों को अङ्ग रूप में प्रयुक्त करने का निर्देश दिया है: 'श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस उच्यते' सा०द० ६।३१७। इस मान्यता के अनुसार श्रृङ्गार, वीर अथवा शान्त-रस प्रधान महाकाव्य का निर्माण होना चाहिए। किन्तु कवीश्वरों की भारती केवल इस सीमा में बँधकर न रह सकी। कुछ कवियों ने श्रृङ्गार अथवा वीर के रसराजत्व को चुनौती देते हुए करुण-रस-प्रधान काव्यों की रचना की। पदवाक्यप्रमाणज्ञ महाकवि भवभूति का करुणरसप्रधान नाटक 'उत्तररामचरित' इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

आदिकवि की अमर कृति के अङ्गी-रस का निर्धारण करते समय सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धताओं की श्रृङ्खला को शिथिल करना आवश्यक होगा, क्योंकि यह उस काल की प्रथम रचना है, जिस काल तक काव्यशास्त्रियों द्वारा काव्य-तत्वों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्धारण नहीं किया गया था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाल्मीकि केवल लौकिक कविमात्र नहीं हैं, अपितु वे साक्षात्कृतधर्मा महर्षि हैं, जो समग्र उत्तमोत्तम काव्यगुणों से परिपूर्ण अमर महाकाव्य का निर्माण करते हुए भी लोककल्याण की, वैदिक संस्कृति के उद्घोष की दिव्य भावना सदैव अपने समक्ष रखकर कविकर्म में प्रवृत्त होते हैं।

महाकवि कालिदास जैसे कवियों के काव्यों को पढ़कर सहसा ही उन्हें शृंगार रस का कवि घोषित कर दिया जाता है, क्योंकि अन्य रसों की तुलना में शृंगार का बाहुल्य एवं वैविध्य, शृंगार के अङ्गीत्व को प्रमाणित कर देता है, किन्तु वाल्मीकि-रामायण की स्थिति इससे भिन्न है। इस महाकाव्य में शृंगार, वीर, करुण, आदि विविध रसों का प्रयोग उत्कृष्ट रूप में और वह भी प्रचुर मात्रा में हुआ है, अतः जो जिस रस के प्राधान्य का पक्षधर है, उस समीक्षक को उस रस की मुख्यता सिद्ध करने का आधार प्राप्त हो जाता है। किन्तु आचार्यों के अनुसार कोई एक रस अङ्गी एवं अन्य अङ्गभूत होते हैं, अतः अन्तःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर अङ्गीरस के निर्धारण का प्रयास करेंगे।

ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि जिन प्रबन्धों में बहुत से रस एकत्रित होकर प्रतिभासित होते हैं, उन रसों में जिस रस का आस्वाद सर्वाधिक प्रतीत होता है, वह रस स्थायीवत् एवं अन्य संचारी के समान होते हैं—'बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद् बहुः। स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः'।। ध्वन्यालोक पृ० ३९७।

वाल्मीकि-रामायण के अङ्गी-रस के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। राम-कथा साहित्य के विद्वान् अध्येता डा० रामप्रकाश अग्रवाल इसे वीर-रस प्रधान महाकाव्य मानते हैं। अपने मत की पुष्टि में उनके तर्क निम्न प्रकार हैं—

१. उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, अतः उत्तरकाण्ड की घटनाओं के आधार पर करुण-रस की प्रधानता नहीं मानी जा सकती।

२. क्रौंच वध का प्रसंग भी संदिग्ध है और केवल उसके आधार पर करुण रस को प्रधान नहीं माना जा सकता।

३. राम एवं अधिकांश पात्रों के वीर चरित्र एवं रावणवध की घटना के आधार पर इसका प्रधान रस वीर ही है।

४. बालकाण्ड में यह उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ में इस महाकाव्य का नाम 'पौलस्त्य वध' रखा गया था। इस आधार पर भी रामायण का प्रधान रस वीर को ही मानना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. भारतीय महाकाव्यों का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों ने युग और वातावरण के आधार पर रामायण और महाभारत को वीर-युग का प्रतिनिधि महाकाव्य माना है ।

६. रामायण में ऐतिहासिक तत्वों की प्रचुरता भी यही प्रकट करती है कि उसमें वीर–रस की प्रधानता है[1] ।

जो अन्य विद्वान् इसे वीर-रस-प्रधान महाकाव्य मानते हैं उनके तर्क भी उपयुक्त ही हैं।

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रामायण में शान्त-रस को प्रधान रस माना है। वे कहते हैं—

"रामायण में बाहुबल को नहीं, जिगीषा को नहीं, राष्ट्रगौरव को नहीं, केवल शान्त रसास्पद गृहस्थ धर्म को ही करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान् शौर्य, वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया गया है[2] ।"

टैगोर ने काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निरूपित शान्त रस को प्रधान नहीं माना है, अपितु समग्र महाकाव्य के अध्ययन से जो जीवनोपयोगी नैतिक शान्ति प्राप्त होती है, उसकी ओर संकेत किया है ।

कतिपय विद्वान् रामायण का अङ्गी-रस भक्तिरस को मानते हैं। इस विषय में के० आर० शास्त्री के विचार इस प्रकार हैं—

> "We are in the Ramayana in a region where the Karun–Rasa regions supreme and is finally transconded and etherialized into Shanta-Rasa and Bhakti–Rasa.[3]"

कुछ समीक्षक श्रृंगार को भी प्रधान रस कह सकते हैं किन्तु विशद् विवेचना के उपरान्त वीर, श्रृंगार, शान्त अथवा भक्तिरस को इस महाकाव्य में अङ्गी रस नहीं माना जा सकता।

शान्त अथवा भक्ति रस के पक्ष में ऐसा कोई प्रबल आधार नहीं है, तथा स्वयं वाल्मीकि ने कहीं ऐसा संकेत नहीं किया है। हाँ इस महाकाव्य में यत्र-तत्र शान्त-रस

---

१. डा० रामप्रकाश अग्रवाल, वाल्मीकि और तुलसी—साहित्यिक मूल्यांकन पृ० ३६८–६९

२. प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) पृ० ७

३. स्टडीज् इन रामायण—पृ० १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रमणीयता दृष्टिगोचर होती है तथा भक्ति-भावना भी परिलक्षित होती है।

रसराज श्रृंगार भी इस महाकाव्य का अङ्गी-रस नहीं हो सकता, क्योंकि यह किसी विलासी कवि की रचना नहीं है अपितु शान्तात्मा महर्षि की वाणी से करुणा-निधान राम के पावन-चरित का सहज उच्छलन है, इसलिए इसमें श्रृंगार की प्रधानता कहाँ ?

इसमें वीर-रस के प्राधान्य को भी अङ्गीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि—

१. रामायण का उत्तर-काण्ड प्रक्षिप्त है। यह अद्यावधि विवादास्पद है, अतः इस काण्ड को प्रक्षिप्त मानकर करुण-रस की प्रधानता को नकार कर, वीर रस को प्रधान नहीं कहा जा सकता।

२. क्रौञ्च-वध का प्रसंग संदिग्ध नहीं है क्योंकि आनन्दवर्धनादि आचार्यों तथा कालिदासादि महाकवियों ने इसे प्रामाणिक माना है।

३. राम एवं अन्य पात्रों के वीरतापूर्ण कार्यों के आधार पर भी इसे वीर-रस प्रधान नहीं कह सकते, क्योंकि इनकी वीरता करुणा के क्रोड से उद्बुद्ध है।

४. ऐतिहासिक तत्त्वों का प्राचुर्य भी वीर-रस के अङ्गीत्व को सुनिश्चित करने वाला सबल आधार नहीं हो सकता।

५. विरही राम के हृदय में समय-समय पर युद्ध का उत्साह तरंगित होता है, यह सत्य है किन्तु इस उत्साह के मूल में करुणा ही है।

अधिकांश सुधी समीक्षकों, आचार्यों एवं महाकवियों ने इस महाकाव्य का अङ्गी-रस करुण को स्वीकार किया है। स्वयं आदिकवि ने अपने महाकाव्य का प्रेरणास्रोत करुणा को माना है। तमसा तट पर विचरण करते हुए महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौंच-युगल में से नर-पक्षी का निर्मम वध होते हुए देखा तो उनके शोकाकुल हृदय से ही मानो यह श्लोक फूट पड़ा था —

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्[1] ॥

महर्षि ने स्वयं अपने शिष्यों से कहा था—

'पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा[2] ॥

---

१. वा० रा० बालकाण्ड, २।१५

२. वा० रा० बालकाण्ड, २।१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वस्तुतः महर्षि के अन्तःकरण का यह शोक ही श्लोकरूप हो गया—'शोकः श्लोकत्वमागतः'[1]।

आचार्य आनन्दवर्धन ने रामायण में करुण रस की प्रधानता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। ध्वनितत्त्व की विवेचना करते हुए वे इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं—

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः[2]॥

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं—

"तथा चादिकवेर्वाल्मीकेर्निहतसहचरविरहकातरक्रौञ्च्याक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः[3]।

दशरूपक में करुण रस की सुखात्मकता प्रतिपादित करते हुए धनिक ने अपनी टीका में रामायण को करुण-रस प्रधान महाकाव्य माना है—

'यदि च लौकिक करुणवद् दुःखात्मकत्वमेवेह स्यात्तदा न कश्चिदत्र प्रवर्तेत, ततः करुणैकरसानां रामायणादि महाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेत्"[4]।

विश्वनाथ ने भी करुणादि रसों की सुखात्मकता निरूपित करते हुए रामायण का अङ्गी रस करुण ही माना है। उनका मत है कि यदि करुणादि को दुःखात्मक मान लें तब रामायणादि महान् काव्य अथवा नाट्यग्रन्थों को दुःखदायी मानना पड़ेगा। रामायणादि काव्य-प्रबन्ध अथवा नाट्य-प्रबन्ध सबके लिए रसात्मक-आनन्द निष्यन्दी प्रबन्ध हैं। इन प्रबन्धों का जो रस है, वह करुण है। अब यदि करुण को दुःखात्मक मान लिया जाये, तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि करुणरसप्रधान रामायण आदि प्रबन्ध सहृदय सामाजिक के लिए दुःखात्मक प्रबन्ध हैं—

"करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्,
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।
किञ्च तेषु यदा दुःखं न कोऽपि स्यात् तदुन्मुखः,
तथा रामायणादीनां भविता दुःखहेतुता[5]॥"

---

१. वा० रा० बालकाण्ड २।४०
२. ध्वन्यालोक १।१५
३. ध्वन्यालोक पृ० ३०
४. दशरूपक ४।४४–४५ पर धनिक की टीका।
५. साहित्य दर्पण ३।४-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कलिदास ने भी आदि-कवि के प्रेरक-स्रोत शोक को मानते हुए प्रकारान्तर से रामायण को करुण-रस प्रधान महाकाव्य माना है –

"निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः[1]"

नाटककार भवभूति ने रामायण को आधार बनाकर करुण-रस प्रधान नाटक 'उत्तररामचरितम्' की रचना की है।

संपूर्ण रामायणी-कथा करुण के क्रोड में ही क्रीड़ा करती हुई प्रतीत होती है। वीर, श्रृङ्गारादि अन्य रसों की धारायें भी अन्ततोगत्वा करुण में ही विलीन होती हैं।

रामायण के पात्र एक ओर वीरता के प्रतीक हैं, तो दूसरी ओर उनके हृदय करुणा से ओत-प्रोत हैं। सभी के अन्तःकरण आँसुओं से गीले हैं। संभवतः इस काव्य का कोई पात्र ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी अवसर पर जी भरकर न रोया हो। रामायण में सर्वत्र करुणा का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। करुणा, कवि के हृदय की मूलभावना है, अतः करुण-रस की योजना करते समय आदि-कवि भाव-सरिता में डूब जाते हैं। ऐसे अवसरों पर कवि की भारती चेतनाचेतन जगत् को शोकमय बना देती है।

केवल युद्धकाण्ड के आधार पर इस महाकाव्य को वीर-रस का महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। किसी एक अंश के आधार पर संपूर्ण महाकाव्य के अङ्गी-रस का निर्धारण नहीं हो सकता। अपितु उस काव्य के समग्र कलेवर को दृष्टिपथ में रखकर ही करना होगा, और संपूर्ण रामायण का अध्ययन करने पर जो रस सर्वाधिक हृदयस्पर्शी है, वह है करुण।

रामायण में प्रारम्भ से अन्त तक स्थान-स्थान पर करुण रस की सुन्दर अभि-व्यञ्जना में महाकवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

---

१. रघुवंश १४।७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों में जीव और हिंसा : एक विवेचन

—डा० सत्यव्रत राजेश, प्राध्यापक
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वृक्षों में जीवविषयक मान्यता आर्य समाज के प्रारम्भिक विद्वानों में भी विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वान् वृक्षों में जीव मानते थे, जिनमें पं० गणपति शर्मा आदि विद्वान् मुख्य थे तथा कुछ विद्वान् वृक्षों में जीव नहीं मानते थे, जिनमें स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। आजकल भी विद्वानों में इस विषय पर मतैक्य नहीं मिलता। वृक्षों में जीव न मानने वालों का प्रबल तर्क यह है कि यदि वृक्ष-वनस्पति आदि में जीव माना जाए तो एक व्यक्ति गाजर-मूली उखाड़कर खाता है तथा दूसरा व्यक्ति गाय-बकरे आदि को मारकर खाता है तब दोनों में अन्तर क्या रहा? हमारा भी वृक्ष से तात्पर्य वृक्ष-औषधि-वनस्पति-लता-वल्लरी आदि सब से ही है, केवल वृक्ष से ही नहीं।

यह प्रश्न बड़ी गरिमा रखता है तथा समाधान चाहता है। इस गहन गुत्थी को सुलझाए बिना हम भी कन्दादि उखाड़कर खाने पर उसी कोटि में आ जाते हैं जिस कोटि में वधिक या व्याध। इस गुत्थी के समाधान की ओर बढ़ने से पूर्व हमें यह देखना है कि वृक्षों में जीवविषय में वेद, उपनिषद्, स्मृतिदर्शन आदि ग्रन्थ क्या मान्यता रखते हैं। सर्वप्रथम वेद को ही लें—

वेद की मान्यता—

वृक्षादि में जीव की सत्ता के विषय में अथर्ववेद कहता है—

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः[1] ॥

अर्थात्, हे मनुष्यों! इस बात को तुम जानते हो कि वह पूजनीय ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म का कथन करेगा जो ब्रह्म न केवल पृथिवी अथवा द्युलोक में ही है अपितु सर्वत्र है तथा जिसके नियमानुसार ये लता (आदि) प्राण लेते हैं।

इस मन्त्र के अन्त में स्पष्ट कहा है कि जिससे ये लताएँ प्राण लेती हैं। प्राणन क्रिया का आधार आत्मा ही है। प्रायः अन्दर से स्वतः बढ़ने वाली वस्तुएँ आत्मा

---

१. अथर्व० १।३२।१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही प्रतीति कराती हैं। औषधि, वनस्पति, वृक्ष, लता आदि सब अन्दर से बढ़ते हैं, अतः इनमें आत्मा को मानना ही होगा। आचार्य सायण ने भी इस मन्त्र में 'प्राणन्ति' का अर्थ 'जीवन्ति' ही किया है। एक अन्य मन्त्र में भी औषधि को जीवन देने वाली, हानि न पहुँचाने वाली तथा जीवित रहने वाली बतलाया है[1]। उस मन्त्र में आए 'जीवन्तीम्' पद का अर्थ क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने 'जीव रखने वाली' किया है।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में औषधि को प्राण लेने वाली तथा जीवित रहने वाली कहा है। प्राण तथा जीवन का सम्बन्ध आत्मा से ही है, जड़ प्रकृति में तो जीवन तथा प्राणन क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता। पृथिवी, जल आदि न तो श्वास लेते हैं और न प्रश्वास छोड़ते हैं, किन्तु वृक्षादि श्वास के रूप में कार्बन लेते तथा प्रश्वास के रूप में ओषजन छोड़ते हैं, यह सर्वविदित ही है। अतः वेद के अनुसार वृक्षादि में आत्मा है।

उपनिषद् मान्यता

उपनिषद् भी वेद के इस सिद्धान्त की पुष्टि करती है। कठोपनिषद् में यम 'मरने पर कोई तत्व शेष रहता है अथवा नहीं' नचिकेता के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि – 'हे नचिकेता ! मुझे प्रसन्नता है कि मैं तुझे इस शाश्वत गुप्तज्ञान को बताऊँगा कि मरकर आत्मा का क्या होता है ? अपने ज्ञान तथा कर्म के अनुसार कुछ आत्मा तो शरीर धारण करने के लिये (मनुष्यादि) योनि को प्राप्त होते हैं तथा कुछ जीव मानवादि से भिन्न स्थावर अर्थात् वृक्षादि की योनि को प्राप्त कर लेते हैं[2]। भाव यह है कि जीवों को ज्ञान तथा कर्म के आधार पर योनि मिलती है। वह योनि जंगम=मनुष्य-पशु-पक्षी-सरी-सृप-कीट-पतंग आदि भी हो सकती है तथा स्थावर=लता, वृक्ष, वनस्पति, कन्द-मूल आदि भी। इस उपनिषद् वाक्य से ब्रह्मकुमारियों की वह मान्यता भी खण्डित हो जाती है जिसके अनुसार वे मानव को कैसा भी कर्म करने पर मनुष्य की ही योनि मिलने की बात करते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी वृक्षादि में आत्मा की सत्ता को स्वीकार किया गया है। आरुणि उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मा के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि - 'हे प्रिय ! जो व्यक्ति इस महान् वृक्ष की जड़ में चोट करे तो वह जीता हुआ रस गिराए, जो मध्यभाग में चोट करे तो वह जीता हुआ रिसता रहे तथा जो अग्रभाग में चोट करे तो भी वह जीता हुआ सुवित होता रहे, पर सूखे वा मरे नहीं, क्योंकि यह वह वृक्ष जीवन तथा आत्मा से परिपूर्ण है। इसमें जीवन-प्राण भी है तथा आत्मा भी, इसी

---

१. जीवला नघारिषां जीवन्तीमौषधीमहम् ॥ अथर्व० ८।७।६

२. हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीर त्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनु संयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम् ॥ कठउ० २।५।६–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण यह पानी पीता हुआ हर्ष से रहता है। इस वृक्ष की एक शाखा को जब जीव छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, दूसरी को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, तीसरी को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है और यदि जीव समस्त वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है[1]। इससे अधिक वृक्षादि में आत्मा की सत्ता का स्पष्ट उल्लेख क्या होगा ?

मनु की सम्मति

मनुस्मृति में भी मनु महाराज वृक्षों में आत्मा की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं। कर्मानुसार जीवों को किस-किस प्रकार की योनियाँ प्राप्त होती हैं, उनका उल्लेख करते हुए वे कहते हैं—प्राणी कर्मानुसार किन-किन योनियों में जन्म लेते हैं, वह सब मैं बताऊँगा। वहाँ जीव की उद्भिज योनि में उन्होंने बीज तथा गांठ ने उगने वाले सब स्थावर, पकने पर समाप्त हो जाने वाली औषधियाँ, बिना फूल के फल लगने वाली गूलर आदि वनस्पति, फूल-फल लगाकर झड़ जाने पर भी स्थिर रहने वाले वृक्ष, गुच्छे-गुल्मयुक्त लता-वल्लरी को गिनाया है[2]। अन्यत्र भी मनु ने स्थावर को जीव का शरीर मानते हुए लिखा है—'शरीर सम्बन्धी दोषयुक्त कर्मों से मनुष्य स्थावर की योनि पाता है[3]।

वेदान्तदर्शन की एतद्विषयक मान्यता

वेदान्तदर्शन के शांकरभाष्य में भी जीवों का चावल, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल तथा उड़द के रूप में जन्म लेने का उल्लेख है[4]। आगे अन्य जीवों से अधिष्ठित व्रीहि यवादि में अनुशयी—अनुशय— कर्म वाले जीवों का सम्बन्ध बतलाया है[5]। इस सूत्र में 'अन्याधिष्ठितेषु' पद स्पष्ट कर रहा है कि व्रीहि यवादि अन्य जीवों से अधिष्ठित होते हैं, अर्थात् अन्य जीव व्रीहि यव आदि के उसी प्रकार अधिष्ठाता=अभिमानी जीव हैं जैसे कि हम अपने शरीर के अधिष्ठाता हैं[6]।

---

१. अस्य सोम्य महतोवृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्योमध्ये हन्याज्जीवन् स्रवेद्योऽग्रे हन्याज्जीवन् स्रवेत्। स एष जीवेनात्मनानु प्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति। अस्य यदेकां शाखां जीवोजहात्यथ सा शुष्यति, द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति, तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति, सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ॥ छां०उ० ६।११ १ २

२. येषां तु यादृशंकर्म भूतानामिहकीर्तितम्। तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥
उद्भिजाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः। औषधयः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः। पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयाः स्मृताः ॥
गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः। बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥
मनु० १।४२,४६-४८

३. शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरता नरः ॥ वही १२।९

४. त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते ॥ ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य ३।१।२४

५. अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ॥ वेदान्त द० ३।१।२४

६. द्र०—गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द से वृक्षों में जीवविषयक शास्त्रार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों में जीवविषयक शंकराचार्य का मत

दार्शनिक शिरोमणि, अपनी प्रतिभा से बौद्धों को परास्त कर वैदिकमत संस्थापक तथा परिस्थितिवश जीवब्रह्म की एकता के प्रतिपादक शंकराचार्य ने भी वृक्षों में जीव को माना है। वे लिखते हैं—वृक्षों के रस स्रवण आदि चिन्हों से उनका जीववाला होना सिद्ध है। दृष्टान्त तथा श्रुति मे भी स्थावर चेतन हैं। बौद्ध तथा कणाद के अनुयायी जो स्थावरों को अचेतन मानते हैं उनकी मान्यता साररहित है[1]।

हमारा यहाँ जीवों की वृक्षों में विद्यमानता दिखाना ही प्रयोजन है, जिससे शंकराचार्य भी सहमत हैं, शेष मान्यता पर आगे विचार करेंगे।

वृक्षादि में जीव और महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द वेदों के परम विद्वान् तथा योगी हुए हैं। उनकी मान्यताएँ वेदों पर आधारित हैं। वे भी वृक्षादि में जीव को मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में उनके द्वारा किये गए प्रश्न से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे वृक्षादि में जीव की सत्ता स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है —"ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्यजन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कृमि कीट पतंग आदि जन्म दिये हैं यहाँ उन्होंने वृक्ष आदि को जीव का शरीर बतलाया है। आगे नवम समुल्लास में मनु के एक श्लोक[2] को उद्धृत करके उसका अर्थ करते हुए लिखा है—'जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म मिलता है[3]।

वृक्षों में जीव और हिंसा : एक उलझा प्रश्न

वेद से लेकर महर्षि दयानन्द तक के ग्रन्थों से यह सिद्ध हो जाने पर कि 'वृक्षादि में जीव है', यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब वृक्षादि में जीव है तब इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख तथा दुःख आत्मा के लक्षण[4] होने से उनके उखाड़ने-काटने आदि से उनको दुःख होने से हिंसा-दोष भी हमें लगना चाहिए। अन्यथा गाय, भैंस, भेड़, बकरी, मुर्गी, मछली, टिड्डी आदि के मारने आदि में भी पाप न लगना चाहिए, क्योंकि जब जीवयुक्त पशु-पक्षी आदि के मारने आदि में पाप माना जाता है तब जीवयुक्त गाजर-मूली आदि के उखाड़ने-काटने आदि में भी हिंसा का दोष लगना चाहिए। आप स्वयं गाजर-मूली आदि खाते हैं तथा हमारे पशु-पक्षी आदि मारने में पाप बतलाते हो, यह दुहरी नीति कैसी? यदि

---

१. वृक्षस्य रसस्रवणादि लिङ्गा ज्जीवतत्वं दृष्टान्त श्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति, बौद्धकाणादमतमचेतनाः स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितंभवति ॥ छां. उ. ६।११।१-२

२. मनु० १२।९

३. स०प्र० समु० ९

४. इच्छाद्वेष प्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥ न्याय द० १।१।१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पापकर्म है तो दोनों पापी हैं और यदि आपको गाजर आदि के उखाड़ने-काटने में पाप नहीं है तो हमें भी बकरी आदि के मारने में दोष क्यों ?

पाप-पुण्य का सम्बन्ध

यह उभरा प्रश्न हमें गम्भीरतापूर्वक सोचने पर विवश करता है। इसका समाधान हुए बिना हम भी बकरी मारने वालों की भाँति हिंसा-दोष से नहीं बच सकते। सर्वप्रथम हमें यह विवेचन करना होगा कि पाप-पुण्य का सम्बन्ध है किससे ? क्योंकि आत्मा तो अमर है। उसके मरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पुनः आत्मा के न मरने पर भी पाप लगने अथवा न लगने का कारण क्या है ? इस विषय में न्यायदर्शन में विचार किया गया है। वहाँ आत्मा को शरीर आदि से पृथक् बताते हुए इस विषय में यह तर्क दिया है कि—"मृत शरीर के जलाने पर पाप नहीं लगता तथा जीवित शरीर के जलाने पर पाप लगता है। यह इस बात का प्रमाण है कि आत्मा शरीर से पृथक् है। उसे ही सुख-दुःख की अनुभूति होती है। चूँकि अब वह शरीर में नहीं रहा, अतः मृत शरीर को जलाने में भी पाप नहीं लगता[1]।" आगे प्रतिपक्षी की ओर से तर्क देते हैं कि जब आप आत्मा को नित्य मानते हो और यह मान्यता रखते हो कि आत्मा कभी मरती नहीं; तब जीवित व्यक्ति के शरीर को जला देने पर भी पाप नहीं लगना चाहिए, क्योंकि आत्मा तो मरी ही नहीं, फिर पाप-पुण्य कैसा ?[2] इस प्रश्न का जो उत्तर दर्शनकार ने दिया है वह हमारे विषय से सीधा सम्बन्ध रखता है, जो इस प्रकार है 'हम नित्य-आत्मा के वध को हिंसा नहीं कह रहे अपितु जीवित व्यक्ति के जलने पर उसके शरीर में जो उपघातपीड़ा-विकलता, बेचैनी, तड़पन होती है, वह हिंसा है। जो जीवित व्यक्ति के जलाने पर तो होती है किन्तु मृतक के जलाने पर नहीं होती। अतः जीवित को जलाना पाप है, मृतक को जलाना नहीं[3]।

इससे स्पष्ट है कि इन्द्रियों तथा शरीर को दी जाने वाली पीड़ा ही पाप का कारण है, चाहे वह अज्ञानवश हो या स्वार्थवश। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी के रोगनिवारण के प्रयत्न में रोगी के मरने पर अथवा अपराधी को यथापराधदण्ड देने में की जाने वाली हिंसा, हिंसा नहीं मानी जाती। क्योंकि समाजतन्त्र को सुव्यवस्थितरूप से चलाने के लिये तथा अपराध की प्रवृत्ति रोकने के लिए की गई दण्डव्यवस्था न्यायाधीश को दोषी नहीं बनाती। यही व्यवस्था शत्रु को युद्ध में मारने पर भी लागू होती है। अतः पाप का कारण स्वार्थ या अज्ञानवश किसी को पहुँचाई जाने वाली पीड़ा है।

---

१. शरीरदाहे पातकाभावात् ॥ न्याय द० ३।१।४
२. तदभावः सात्मक प्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥ वही, ३।१।६
३. न, कार्याश्रयकर्तृवधात् ॥ वही, ३।१।६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों तथा पशु आदि में रचनाभेद

अब विवेचनीय प्रश्न यह है कि वृक्षादि में स्थित अभिमानी जीवों को पीड़ा का अनुभव होता है अथवा नहीं ? यदि उनको पीड़ा होती है तो उनके उखाड़ने-काटने पर हम पाप से नहीं बच सकेंगे। वस्तुतः पशु आदि तथा वृक्षादि में स्थिति भिन्न है। क्योंकि गाय आदि को पीड़ा होना तो प्रत्यक्ष है, उसमें तो किसी को संशय ही नहीं। उन्हें तो हमारी ही भाँति सुख-दुःख की अनुभूति होती है। किन्तु वृक्षादि स्थावरों की स्थिति इससे भिन्न है, उन्हें हमारी भाँति सुख-दुःख का अनुभव नही होता। इस विषय में महर्षि दयानन्द के विचार बहुत स्पष्ट तथा मार्गदर्शक हैं। सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में जैनियों के वायुकाय जीवों की हिंसा बचाने के लिये उनके द्वारा मुख पर पट्टी बाँधने की समीक्षा करते हूए वे लिखते हैं— 'देखो, पीड़ा उसी जीव को पहुँचती है जिसकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो।' इसमें प्रमाण —

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ॥[1] यह सांख्यशास्त्र का सूत्र है।

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का पाँचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है, तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है। जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प व्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्यबहिरी वाले को स्पर्श, पिन्नस रोग वाले को गन्ध और शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है।

देखो, जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नही होती। क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख-दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता।

और जैसे वैद्य वा आजकल के डाक्टर लोग नशा की वस्तु खिला या सुँघा कर रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते व चीरते हैं, उनको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर वाले जीवों को सुख व दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता।

जैसे मूर्च्छित प्राणी सुख-दुःख को प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्च्छित होने से सुख-दुःख को प्राप्त नहीं हो सकते। फिर उनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है[2] ?

महर्षि दयानन्द का इस विषय में स्पष्ट मत है कि वायुकायादि जीव हों या वृक्ष आदि स्थावर के जीव, सब अत्यन्त मूर्च्छित अवस्था में हैं। इन्हें सुख-दुःख का लेश भी नहीं होता अतः इनके उखाड़ने-काटने में पाप भी नहीं लगता।

---

१. सांख्य द० ५।२७

२. सत्यार्थ प्रकाश समु० १२, पृ० ७००-७०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द का यह मत वेदसम्मत है—

महर्षि दयानन्द ने जहाँ सांख्यदर्शन का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि ज्ञानेन्द्रियों के अभाव में जीव उस-उस इन्द्रिय से होने वाले सुख-दुःख की अनुभूति नहीं कर सकता, वहाँ उन्होंने वृक्षादि में स्थित जीव को अत्यन्त मूर्च्छित अवस्था में बतलाया है। यह उनकी कल्पना ही नहीं है अपितु वेद में भी ऐसा ही लिखा है। वहाँ वृक्षों को 'ऊर्ध्वस्वप्न' अर्थात् स्वप्न से ऊपर बतलाया गया है[1]। स्वप्नावस्था से ऊपर सुषुप्ति ही होती है। अतः वेदानुसार भी वृक्ष सुषुप्ति अवस्था में हैं; अतः उनके उखाड़ने-काटने आदि में पाप नहीं लगता। वेद ने पशुओं का दूध तथा औषधियों के खाने का भी आदेश दिया है[2]। जबकि पशु जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं तथा मारने-काटने या घाव करने पर उन्हें दुःख की अनुभूति होती है; अतः उनके मारने आदि में पाप लगता है। कुछ लोग यह भी प्रश्न करते हैं कि यदि किसी को मूर्च्छित करके मार लिया जाए तब तो उसके मारने में भी पाप नहीं होना चाहिए क्योंकि उसे भी दुःख की अनुभूति नहीं होगी। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या परमेश्वर ने किसी को स्वभाव से ही मूर्च्छितावस्था में उत्पन्न किया है अथवा उसकी वह अवस्था कृत्रिम बनाई गई है? यह ऐसे ही है जैसे एक व्यक्ति को प्रभु ने उसके कर्मों के कारण दरिद्र बनाया हो तथा दूसरे को किसी ने उसका सर्वस्व अपहरण करके दरिद्र बना दिया हो तथा फिर यह तुलना की जाए कि जब एक को प्रभु ने दरिद्र बनाया है तब दूसरे को हमने दरिद्र बना दिया तो हमें पाप कैसा? इसी प्रकार जिसे परमात्मा ने स्वभाव से अत्यन्त मूर्च्छित अवस्था वाला बनाया है उसी के काटने आदि में पाप न लगेगा किन्तु जिसे आपने मूर्च्छित किया है उसके मारने में दोष अवश्य लगेगा; क्योंकि आप परमेश्वर की व्यवस्था में अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दखल दे रहे हैं। परमेश्वर की व्यवस्था का उल्लंघन पुण्य कैसे हो जाएगा? वह तो पाप ही रहेगा। अतः उस व्यवस्था का तोड़ने वाला पापी अवश्य होगा।

उपर्युक्त समस्या का एक अन्य प्रकार से समाधान

इस बात को एक अन्य प्रकार से भी समझाया जा सकता है। हमें जीवित रहने तथा कार्य करने के लिये पाँच कोशों की अपेक्षा है, जो इस प्रकार हैं—

१) अन्नमयकोश—यह त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है।

२) प्राणमयकोश—इसके अन्तर्गत प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान आदि प्राण के भेद आते हैं। यह कोश जीवन में सहायक है।

३) मनोमय कोश—यह मन, अहंकार तथा वाणी, पैर, हाथ एवं मलमूत्रेन्द्रिय, इन पाँच कर्मेन्द्रियों का समुदाय है।

---

१. अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः॥ अथर्व० ६।४४।१

२. पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छवात्॥ अथर्व० १९।३१।५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४) विज्ञानमय कोश—इसमें बुद्धि, चित्त तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं। इसी से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।

५) आनन्दमयकोश—इसमें प्रीति, प्रसन्नता तथा न्यून या अधिक आनन्द की प्रतीति होती है[1]।

इन पाँच कोशों में से ज्ञान आदि का व्यवहार, चाहे वह सुखात्मक हो अथवा दुःखात्मक, तब तक जीव नहीं कर सकता जब तक उसे विज्ञानमय कोश न मिले। महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में कोशों का स्पष्टीकरण करते हुए, विज्ञानमय कोश का स्वरूप बतला कर आगे लिखते हैं कि—'इसी से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।' अर्थात् इस कोश के बिना जीव ज्ञानादि व्यवहार करने में सर्वथा असमर्थ है। यदि किसी समय सुषुप्ति अथवा मूर्च्छा के कारण जीव का यह कोश कार्य नहीं करता तो उस जीव को उस समय सुख या दुःख की अनुभूति नहीं हो सकती।

परमपिता परमेश्वर दयालु तथा न्यायकारी है। वह सर्वज्ञ है, अतः जानते हैं कि वृक्षादि के बिना मनुष्य आदि प्राणियों का जीवन भी नहीं चल सकता। अतः ईश्वर ने ऐसी व्यवस्था बनाई है कि जिससे हम कन्द-मूल आदि को खाकर जीवनयापन भी कर सकें तथा उन्हें किसी प्रकार दुःख भी न हो। उन्हें दुःख न होने से व्यक्ति को उनके उखाड़ने-काटने आदि में पाप भी न लगे। क्योंकि पापपुण्य का सम्बन्ध किसी को दुःख-सुख होने से है, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं।

यह व्यवस्था इस प्रकार है कि पाँचों कोशों में से वृक्षादि के अन्नमय एवं प्राणमय कोशों को विकसित किया गया है। अन्य कोशों के विकसित न होने से इन्हें सुख या दुःख की अनुभूति नहीं होती। क्योंकि हम पहले ही बतला आए हैं कि सुख-दुःख का अनुभव बिना विज्ञानमय कोश के जीव नहीं कर सकता। वैसे निष्प्रयोजन वृक्षादि के काटने से समाज की पर्यावरणदूषण रूप हानि होने से व्यक्ति पाप का भागी बनने से बच नहीं सकता।

इस प्रकार मानव, पशु-पक्षी आदि में विज्ञानमय कोश के विकसित होने से उन्हें मारने पर उन्हें दुःख होता है तथा मारने वाले को पाप लगता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि आनन्दमय कोश पशुओं का भी विकसित नहीं है। अतः वे ऐन्द्रिक सुखों को प्राप्त कर सकते हैं, समाधिजन्य आनन्द को नहीं। यह विभेदकरेखा मानव तथा पशु के बीच सदा रहेगी। मानवयोनि की श्रेष्ठता है भी इसी आनन्द की प्राप्ति करने में। वृक्षादि में केवल अन्नमय और प्राणमय कोशों का विकास होने से उन्हें सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती, अतः इनके उखाड़ने, काटने तथा खाने में पाप भी नहीं लगता। अण्डे के गर्भरूप होने तथा मलिन स्थान से उत्पन्न होने से वह भी खाद्य नहीं हो सकता।

---

१. इसकी व्याख्या के लिये सत्यार्थ प्रकाश का नवम समुल्लास देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समस्त विवेचन से पाठक समझ गए होंगे कि क्यों पशु आदि के मारने में व्यक्ति पाप का भागी बनता है तथा क्यों वृक्षादि के आवश्यकतानुसार उखाड़ने-काटने आदि से पाप नहीं लगता। अतः हमें पशु, पक्षी, मछली, अण्डा आदि के भक्षणरूप पाप से बच कर, शाक, पात, कन्द, मूल, फल, फूल आदि को ही अपने भोजन का अंग बनाना चाहिये तथा मांसादि भक्षण त्याग कर, पाप एवं रोग से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

— डा० रामप्रकाश अग्रवाल
परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)

प्रभाकर जी का पहले नाम सुना, फिर रूप देखा, फिर काम देखा और इन तीन सोपानों से गुजर कर उनके साथ वह तादात्म्य स्थापित किया जो एक अध्यापक और पाठक, एक लेखक और सच्चे साहित्यकार के साथ होना चाहिये। यही सारस्वत-साधना है, यही वाङ्मय विमर्श है, यही वाणी का वरदान है। इस प्रकार का तादात्म्य ही मेरे पाठकीय, अध्यापकीय और साहित्यिक जीवन का साध्य रहा है। प्रभाकर जी की रचनायें मेरे साहित्यिक आस्वाद की कसौटी बनी हैं और उनके माध्यम से मुझे साहित्य-शास्त्र, साहित्य-दर्शन और साहित्य-कला की परिभाषा और विवेचना में अभिनव आयाम प्राप्त हुए हैं। अतः आज भी, उनके ८३वें जन्मदिन (२९ मई) के स्वागत में, उनकी समस्त रचनाओं के निर्माण के लिये किसी एक उपाधि, किसी एक विशेषण, किसी एक शब्द का चयन करना चाहता हूँ, पर एक से काम नहीं चल रहा है। अतः सफल एवं सिद्ध साहित्यकार की, प्रभाकर जी के माध्यम से, यथासम्भव सही परिभाषा करने के लिये मैंने दो पदबन्ध चुने हैं—

'शब्द-शिल्पी' और 'शब्दान्तर्यामी'।

इन दो शब्दों का अन्तर और दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करके आदर्श साहित्य की रूपरेखा तथा प्रभाकर जी की रचनाओं में उनके लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करने से पूर्व, मैं उनके साथ अपने परिचय के विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि उनमें कुछ संस्मरणों का सम्बन्ध साहित्यिक-संस्कारों के साथ जुड़ गया है। विगत चालीस वर्षों में उनके बाह्य साक्षात्कार से लेकर आध्यात्मिक सम्बन्ध का जो अनुभव किया है, वह वस्तुतः एक पाठक और लेखक एवं एक अध्यापक और साहित्यकार की साहचर्यमयी सुखद यात्रा की रमणीय कथा है। इस कथा के तीन खण्ड हैं—कीर्ति-श्रवण, वेश-दर्शन और वाणी-अवगाहन।

प्रभाकर जी का प्रत्यक्ष परिचय मुझे मेरठ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर १९४८ में प्राप्त हुआ। उससे पूर्व, पिछले दो वर्षों में मेरठ कालिज में अध्यापनरत होने के साथ-साथ मैं उनका नाम सुनता रहा था। उससे मैंने उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में यह अनुमान किया था कि वे एक प्रसिद्ध, यशस्वी कांग्रेसी नेता रहे हैं और अब एक नये कैरियर, विशेषतः पत्रकारिता में प्रवेश की तैयारी कर रहे हैं। इस तैयारी में हिन्दी के एक यशस्वी पत्रकार, साधक, लेखक और सिद्धसाहित्यकार की रचना का इतिहास निहित होगा, ऐसी कल्पना मेरी तब नहीं थी।

अतः उनके परिचय के प्रति मेरी ललक एक ख्यातिप्राप्त कांग्रेसी नेता का सान्निध्य प्राप्त करने भर की थी, न कि किसी आदर्श साहित्यकार का साहचर्य प्राप्त करने की। परन्तु जब उक्त साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन की समाप्ति पर अगले दिन मैंने उन्हें मेरठ की सुप्रसिद्ध कहानीलेखिका स्व० कमला चौधरी के सभाकक्ष में एक कविगोष्ठी के संचालक के रूप में देखा, तो मेरे श्रवणप्राप्त परिचय के पादप में दर्शनप्राप्त परिचय की एक नई शाखा फूटी और मैंने अनुभव किया कि यह व्यक्ति हमारे देश के नये इतिहास का एक कांग्रेसी कर्णधार ही नहीं, अपितु आधुनिक हिन्दीसाहित्य की नित्यनूतन विकासमयी भाषा का सूत्रधार भी प्रतीत होता है। उनके धवल कांग्रेसी परिधान और धोती-कुरते की विशुद्ध भारतीय धज्जा में सहज आत्मविश्वासमयी प्रसन्नमुद्रा के विवर से प्रस्फुटित प्रांजल गद्यधारा की ज्योति ने मुझे पहली बार उसी प्रकार के सम्मोहन में लपेट लिया, जिस प्रकार १९४० ई० में एम०ए०-हिन्दी की परीक्षा की तैयारी के समय डा० नगेन्द्र के 'साकेत : एक अध्ययन' ने लपेटा था। डा० नगेन्द्र ने जिस प्रकार मौलिक साहित्यास्वाद के संस्कार अपनी कृति के द्वारा मेरे मन में अंकुरित किए थे, उसी प्रकार एक परम निपुण और कुशल गोष्ठीसंचालक के रूप में प्रभाकर जी की वाग्मिता ने मेरे मन में कदाचित पहली बार गद्यशैली की कवित्वमयता अथवा सहृदयजन की सहजभाषा में निहित नैसर्गिक काव्य की रमणीयता की परख के संस्कार पैदा किए थे।

मैंने उस दिन कुछ गम्भीरता से समझने की चेष्टा की कि भाषा की सम्मोहकशक्ति कहाँ रहती है, भाषा पर अधिकार का क्या अर्थ होता है, और व्यक्तित्व तथा अभिव्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध क्या होता है? आज चालीस वर्ष बाद अपने अध्यापक और समीक्षक जीवन का सिंहावलोकन करते हुए मुझे इस अतीत-यात्रा में अनायास ही 'प्रभाकर' जी का उपनाम, मुख्यनाम की अपेक्षा इसलिए अधिक सार्थक प्रतीत हो रहा है क्योंकि इस लेखक ने भाषा की नई 'प्रभा' की ओर मुझे आकृष्ट किया है। इस नई 'प्रभा' ने मेरे यत्किंचित् अध्यापनकौशल में विशिष्ट योगदान किया है। एक कुशल अध्यापक और एक सिद्धलेखक, दोनों के ही कर्म में शब्दशिल्प का अभ्यास अनिवार्य है। मुझे लगता है कि मैंने प्रभाकर जी के शब्दशिल्प को कुछ अन्य साहित्यसृष्टाओं के समान अपनी अध्यापकीय वाणी में आत्मसात किया है। उनका अनुरोध रहा है कि मैं लेखक भी बनूँ, पर उनका समीक्षक बनने में जो सुख मुझे मिलता है, वह लेखकत्व में अलभ्य होगा। अतः एक श्रेष्ठ साहित्यकार की साधना में शब्दशिल्प और शब्द की गहराइयाँ, ऊँचाइयाँ एवं विस्तार देखना ही मेरा साध्य रहा है। प्रभाकर जी ने साहित्यसृजन के लिए शब्दब्रह्म की आराधना की है और मैंने साहित्यास्वादन के लिए। उपासक हम दोनों ही हैं। यही हमारा तादात्म्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय का दूसरा सोपान था मेरठ कालिज में १९६२-६३ ई० के आस-पास का दीक्षा-समारोह और वार्षिकोत्सव तथा उस अवसर पर श्रेष्ठ छात्रों के लिये पुरस्कार हेतु उत्तम पुस्तकों का चयन। अनेक प्रकाशकों तथा पुस्तकविक्रेताओं द्वारा जुटाई गई प्रभूत पुस्तकराशि में से लगभग सौ पुस्तकों का एक-दो दिन या कुछ घण्टों में चयन कठिन कार्य था, विशेषतः इसलिए कि बहुत-सी नई पुस्तकें सामने थीं और उनमें से चयन के लिए कुछ अध्ययन, विषयसूची पर दृष्टिपात और पन्नों की उलट-पलट करना तो अनिवार्य ही था। इसी क्रम में सहसा कुछ शीर्षकों पर मेरी दृष्टि पड़ी और लगा कि हिन्दी की अभिनव-सरस्वती की सुहागबिन्दी ही मुझे दिख रही है। इस तरुण हिन्दी की सुहागबिन्दी की नूतन किरणें थीं — दीप जले शंख बजे, माटी हो गई सोना, आकाश के तारे धरती के फूल, क्षण बोले कण मुस्काये, महके आँगन चहके द्वार, बाजे पायलिया के घुँघरू — और इन छः शीर्षकों ने मेरा घण्टों का काम मिनटों में निबटा दिया।

प्रभाकर जी की लेखनी का सम्मोहन 'ज्ञानोदय पत्रिका' के द्वारा मन पर व्याप्त हो चुका था, अब बिखरे लेखग्रन्थों में कायाग्रहण कर सामने आया था। अतः व्यक्तित्व को अंतरंग एकाग्रता के साथ देखने की सुविधा थी। इन छः ग्रन्थों के पाँच-छः सैट मैंने पुरस्कार के लिए चुन लिए और मन में संकल्प किया कि कभी पाठ्यक्रम की समिति में भाग लेने का अवसर मिला तो आधुनिक हिन्दीसाहित्य के इन अलंकारों से तरुण छात्र-छात्राओं के कण्ठ को प्रतिध्वनित करने का प्रयास करूँगा। यह संकल्प शुभ था, शिव था, सुन्दर था। इसमें कोई स्वार्थ, कोई पक्षपात, कोई प्रलोभन न था। अतः शिवसंकल्प की सिद्धि मुझे मेरठ विश्वविद्यालय के प्रथम हिन्दी पाठ्यक्रमनिर्माता के रूप में प्राप्त हुई १९६६-६७ में। अब मेरा मनोद्वन्द्व केवल यह था कि किस ग्रन्थ का चयन किस कक्षा के लिए किया जाए?

मेरठ विश्वविद्यालय की स्थापना १९६६-६ में हुई थी और १९६८ में पहला पाठ्यक्रम तैयार किया गया था। कुछ विषयों के लिए आनर्स कक्षा की भी स्वीकृति दी गई थी। हिन्दी के लिए इसकी स्वीकृति प्रयोगशील प्रथम कुलपति डा० रामकरण सिंह ने प्रदान कर दी। अतः चयन का मार्ग प्रशस्त हुआ और मैंने अनुभव किया कि प्रभाकर जी की रचनायें आनर्स कक्षा के लिए अधिक उपयुक्त होंगी। बी०ए० का सामान्य छात्र उनमें प्रादुर्भूत गद्य-शैली का स्तर सम्यक्रूप में परख नहीं पाएगा और एम०ए० के छात्र को साहित्यशास्त्र की जिस चौकी पर बैठाने का प्रयत्न किया जाता है, उससे प्रभाकर जी की परम्परा भिन्न है। उन्होंने परम्परा का परिवर्तन और भाषाशैली के नये मोड़ों की उद्‌भावना अपनी रचनाओं में की है। उनकी रचनाओं के द्वारा हिन्दीसाहित्य के नये अंकुर प्रस्फुटित हुए हैं और न केवल गद्य की कई विधाओं — संस्मरण, रिपोर्ताज और रेखाचित्र आदि की स्थापना और परिष्कार हुआ है, अपितु गद्यसाहित्य के लिए साहित्यशास्त्र के अभिनव अध्याय रचने की आवश्यकता प्रादुर्भूत हुई है। इस नये साहित्यशास्त्र की रूपरेखा रचित करने के लिए स्नातक से स्नातकोत्तर के प्रवेशद्वार के रूप में 'आनर्स' कक्षा ही उचित प्रतीत हुई। इसमें थोड़े छात्र रहते थे, आठ या दस। उनके बीच गद्य के लालित्य और गद्य की अभिनव विधा को समझने का यथेष्ठ अवसर मिला। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी 'संस्मरण' के आचार्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायकृष्ण दास गद्यगीत के प्रवर्तक, महादेवी वर्मा रेखाचित्रों की अद्‌भुत सृष्टा और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ललितनिबन्धों के सूत्रधार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे, तथा रामवृक्ष बेनीपुरी नाटकीयगद्य की हृदयग्राही शैली का प्रवर्तन कर चुके थे। रावी की दोहे जैसी लघुकथाएँ भी हिन्दीगद्य का नूतन शृंगार कर रही थीं। तभी आनर्स कक्षा में पहले 'दीप जले शंख बजे', और उसके बाद 'क्षण बोले कण मुस्काये' पढ़ाते समय छात्रों की तन्मयता ने तकाजा किया कि इन गद्यलेखों की शास्त्रीय परिभाषा की जाए। पर जो परिभाषा की सीमा में बँधने को तैयार न हो, उसे परिभाषा में बाँधा कैसे जाए ? और क्यों बांधा जाए ? प्रभाकर जी ने अपने जीवन के पग-पग को इन लेखों में उड़ेला है, स्वतन्त्रता के इतिहास की एक-एक कड़ी में भरे संगीत को परखा है, भारतीय बस्तियों, खेतों, गलियों, दुकानों, स्टेशनों, दफ्तरों, विद्यालयों, थानों, कारागारों में पलते भारतीय हृदय के दर्शन किये हैं और भारतीय जनता के स्वभाव, संस्कार, चरित्र और श्रद्धा के चित्राँकन में नवीन 'वन्देमातरम्' का गायन किया है। आनर्स के छात्रों को परिभाषा मैंने नहीं बताई, वरन् उनसे ही पूछी और उत्तर मिला —"रहने ही दीजिये, बस एक-दो लेख ही आहिस्ता-आहिस्ता पढ़ा दीजिये, तन्मय होने दीजिये, ताकि हम स्वयं उनकी परिभाषा कर सकें और सूक्ष्म में विराट को देख सकें। हमें तो इन लेखों में सम्पूर्ण साहित्य प्राप्त हो रहा है, हमें उनसे उत्तम गद्यरचना का शिक्षण मिल रहा है, इन्हें गद्य और पद्य की परिधियों में नहीं बाँधा जा सकता। ये केवल साहित्य ही नहीं हैं, इतिहास भी तो हैं, समाजशास्त्र भी तो हैं, राजनीतिशास्त्र भी हैं, दर्शन भी है और विज्ञान भी हैं।"

उन छात्रों की अनुभूति में मुझे एक सूत्र मिल गया और वह यह था कि साहित्य यदि सहितता की विधा है तो उसका अर्थ यह भी होना चाहिए कि वह विधाओं की विधा है, शास्त्रों का शास्त्र है, उसमें ज्ञान और अनुभूति की समग्रता रहती है। श्रेष्ठ साहित्य में विभिन्न विधायें और विविध शास्त्र, देवमंदिर में अनेक मूर्तियों के बीच एक ही अद्वैत देव का दर्शन कराते हैं। इसीलिए साहित्य को 'शब्दब्रह्म' की साधना माना गया है और उसके आस्वाद को ब्रह्मानंद का सहोदर कहा गया है। आनर्स कक्षा के छात्रों की तन्मयता के स्वरूप ने मुझे ब्रह्मानंद का प्रत्यक्षीकरण कराया था और जहाँ तक मुझे स्मरण आता है सभी को प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त होते थे। मुझे संतोष मिला कि बिना साहित्य-शास्त्र बाँचे, बिना लक्षण निर्धारण किये, बिना सूत्रों को रटाये, मैंने एक श्रेष्ठ साहित्यकार की रचनाओं द्वारा निगमन पद्धति से अपने छात्रों के मानस में साहित्याचार्यत्व का बीज-वपन कर दिया है। उन्हें अनजाने ही साहित्यशास्त्र का प्रशिक्षण मिल गया था। इस प्रकार हिन्दी आनर्स के छात्र हिन्दी एम. ए. में साहित्यशास्त्र की ताजी भूमिका के साथ प्रविष्ट होते रहे। मेरा अध्यापकीय प्रयोग सफल हुआ, अर्थात् एक ओर साहित्यशास्त्र के प्रारंभिक प्रशिक्षण की नींव स्थापित हुई और दूसरी ओर आनर्स कक्षा की सार्थकता भी प्रमाणित हो गई।

अब हम श्रद्धाँजलि-निबन्ध के शीर्षक का विवेचन कर लें और उसकी व्याख्या द्वारा साहित्यदेवता और उसके आराधक की वर्षगाँठ का प्रमाण प्रदान कर दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न यह है कि 'साहित्य' शब्दशिल्प की कारीगरी है, या शब्द में निहित अपार ऊर्जा, प्रकाश, सक्रियता, सवेदना आदि के रूप में विद्यमान किसी महान शक्ति के साक्षात्कार, अनुभव और अभिव्यक्ति का प्रयास है ? अंग्रेजी का शब्द "लिटरेचर" वर्ण-संयोजन और शब्दयोजना की कला का संकेत करता है, जबकि संस्कृत का शब्द 'साहित्य' शब्द और अर्थ की सहितता का वाचक है। एक आचार्यवर्ग शब्द और अर्थ की प्रथकता मानता ही नहीं, अर्थात् शब्दमात्र में अर्थ रहता ही है। उसे झंझोर कर, झकझोर कर, झनझना कर उसमें से अर्थ खोज लेना ही साहित्यसाधना और कला है। वस्तुतः इन तीनों में कोई अन्तर नहीं है। 'लिटरेचर' का अर्थ भी ऐसी वर्ण-योजना अथवा शब्दसंयोजन से है जो भावात्मक, संवेदनात्मक प्रभाव उत्पन्न कर दे (टु काज इमोशनल इफेक्ट, आक्सफोर्ड डि.), और शब्द तथा अर्थ की सहितता का संकेत भी इसी ओर है अर्थात् अभीष्ट अर्थ के लिए सही, उपयुक्त शब्द की खोज। इसी दृष्टि से कृति या सिद्धसाहित्यकार को शब्दों या 'शब्द' मात्र का ,अन्तर्यामी कहा जा सकता है। जिस प्रकार एक निपुण आखेटक आरण्य का अन्तर्यामी होता है, एक कुशल गोताखोर उदधि का अन्तर्यामी होता है, एक विपदगामी आकाश का और ज्योतिषी नक्षत्रों का अन्तर्यामी होता है, उसी प्रकार सिद्धसाहित्यकार शब्द का अन्तर्यामी होता है। भगवान ही भक्त के हृदय में निवास नहीं करते, अपितु भक्त भी भगवान के हृदय में निवास करते हैं। भगवान राम आजीवन हनुमान के ऋणी रहे। जिस महाजन का ऋण चुकाया ही न जा सके, जिसका मूलधन ही मूल्यातीत और उसका ब्याज संख्यातीत हो, तो उसका भुगतान असम्भव ही होगा।

ऐसी स्थिति में ऋणदाता के प्रति ऋणिया का हृदय सदैव कृतज्ञ ही रहेगा अर्थात् उसके हृदय में उसका महाजन सतत् विद्यमान रहेगा। हनुमान, सीता, लक्ष्मण, शबरी और राधा तथा उद्धव आदि इसी कोटि के सिद्धभक्त थे जो स्वयं भगवान के हृदय में निवास करते थे। राधा, श्याम में समाई हुई थी, सीता "पिय हिय की जाननिहारी" थी, लक्ष्मण राम के संकेतों को निमिषमात्र में जान लेते थे, और हनुमान तो उनकी पलकों के पहरेदार ही थे।

यह 'अन्तर्यामित्व' साहित्य का दर्शन भी है, विज्ञान भी है और कला भी। भक्ति-साधना का यह मूलतत्व है और सच्चा साहित्यकार वास्तव में आदर्श भक्त ही होता है। भक्तिभाव के बिना उत्कृष्ट, युग-युगजीवी और लोकव्यापी अमर संगीत जैसे साहित्य का सृजन असम्भव ही होता है। तो प्रभाकर जी की भक्ति किस श्रेणी की है? वे किसके भक्त हैं, किसके हृदय में विराजते हैं, और कौन उनके हृदय में विराजता है ? मेरे लिये इसका उत्तर स्पष्ट है, क्योंकि मैं उनके साहित्य का सहज आस्वादक होने के नाते उनके शब्दों का अन्तर्यामी हूँ। उनके ही शब्दों का नहीं, वरन् शब्द की अन्तर्यात्रा का नया प्रस्थान मुझे उनकी रचनाओं से प्राप्त हुआ है। मैं कृतज्ञ हूँ मेरठ कालिज में आनर्स कक्षा के उन छात्र-छात्राओं का भी, जिनके साथ मुझे राष्ट्र की अन्तर्यात्रा का सुअवसर मिला और साहित्य-दर्शन की अभिनवदृष्टि प्राप्त हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त, शिल्पी और साहित्यकार एक ही माता और एक ही पिता की सन्तान हैं। उनके संस्कार और साधना एक समान होती है। भक्ति हृदय की पवित्रता, परिष्कृत राग और निश्छल आत्मसमर्पण है। उसमें निहित रागतत्व जब अपने अनुराग को मूर्तिमान करना चाहता है अर्थात् अनुराग के आलम्बन को प्रत्यक्षरूप में देखने का प्रयास करता है, तब भक्त के द्वारा किसी प्रतिमा का सृजन होने लगता है। यह प्रतिमा स्थूलपाषाण, या चित्र-फलक सगुण साकाररूप में उभरती है, पर सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम उपकरणों की ओर अग्रसर होती हुई शब्दों तथा रागों में उभर कर आती है।

इस कलात्मक उपासना में कोई श्रेणी-विभाजक अनावश्यक है, क्योंकि उपासना का स्रोत या आसन एक ही जैसा रंगरचित हृदय होता है। हिन्दी के स्वर्णयुग के भक्त और सन्तकवि सच्चे उपासक थे, सगुण और निर्गुण का विभाजन केवल आनुषंगिक है। वे सच्चे उपासक थे, इसीलिए श्रेष्ठ साहित्यकार प्रमाणित हुए। वे लक्ष्य थे, लक्षणों का निर्धारण उनकी रचनाओं के आधार पर हुआ। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, घनानन्द आदि की रचनाओं के द्वारा हिन्दी का नया साहित्यशास्त्र प्रकाश में आया, जिसमें परम्परा आत्मसात थी और प्रगति का प्रस्थान था। इसी प्रकार गद्यप्रधान आधुनिक हिन्दी साहित्य के आधार पर आधुनिक साहित्यशास्त्र का आधुनिक, नवीन अध्याय लिखा जाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति हो रही है, पर वह हल्की, धीमी और उथली प्रतीत होती है। हिन्दीगद्य के साधनारत शिल्पियों की रचनायें उपासक पाठकों की प्रतीक्षा कर रही हैं जो अध्ययन और अध्यापन के व्यवसाय से बाहर स्वाध्याय, मनन और चिन्तन के संस्कारों से युक्त हों तथा आलोचना, समालोचना, समीक्षा आदि पाश्चात्य प्रणालियों को पौर्वात्य भाष्य, टीका, वार्तिक, निरुक्ति आदि की पाँडित्यमयी परम्परा के साथ जोड़ने की क्षमता रखते हों। हिन्दी के ललितगद्य की अनेक विधाओं में दृश्य और श्रव्य का नूतन समन्वय विद्यमान है जिसके विवेचन के लिए भाषा-दर्शन और साहित्य-दर्शन दोनों का निरूप अपेक्षित है।

भारतीय साहित्य आदर्शवादी है। उसकी प्रवृत्ति आस्था, आस्तिकता और आशावाद की है। वैदिक वाङ्मय से लेकर आज तक जिस भारतीय साहित्य को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलती रही है, उसमें एक व्यापक मानवीय संस्कृति निहित है। उपनिषदों में प्रस्फुटित "सर्वे सन्तु निरामया" और "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु', वाल्मीकि रामायण में आविर्भूत राम का "धर्मविग्रहत्व", और रामचरितमानस में उनका मर्यादा पुरुषोत्तमरूप, तथा रामराज्य, और कामायनी का शिवत्व भारतीय साहित्य की मूलभूत प्रवृति के द्योतक हैं। ये सभी उपासनाकाव्य के अन्तर्गत हैं। इन सभी में एक प्रकार की भक्तिमयी भावधारा प्रतीत होती है। कभी यह ईश्वरभक्ति कहलाई, कभी देवभक्ति, कभी देशभक्ति, कभी मानवभक्ति। वस्तुतः इसमें भी पृथकत्व नहीं है। इसी लिये प्रभाकर जी की रचनाओं के मूल में भी भारतीय संस्कृति का अनिवार्य तत्व 'भक्ति' विद्यमान् है। वे शब्द के उपासक हैं, शब्द के अन्तर्यामी हैं, अतः अनिवार्यरूप से शब्द के माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से महत्ता, उदात्तता, विराटता, अनन्तता, असीमता के अन्वेषी हैं। इस अन्वेषण में स्वयं उनका अन्तर्जगत उद्घाटित हुआ है, और इस अन्तर्जगत के आसन पर विराजमान हैं उनके देवतुल्य, "मिश्री से मीठे" पिता, "ततैया मिर्च जैसी तीखी" माता, जन्मभूमि देवबन्द की गलियाँ, खेत, खलिहान-पोखर, कर्मभूमि सहारनपुर के बाग-बगीचे, हाट-बाजार, थाना और कारागार। मातृभूमि भारत के ऐतिहासिक भवन, सभागार, संग्रहालय, रंगमंच और पंडाल, तथा इन सबसे सम्बन्धित सामान्य मानव से लेकर असामान्य मानव तक की — किसान, मजदूर, मेहतर, हज्जाम, कुली से लेकर नवीन भारत के निर्माता राष्ट्रपुरुष गांधी, नेहरू, आजाद, तिलक जैसे नेताओं और मूर्धन्य कवियों तथा साहित्यकारों की—विभिन्न छवियों, मुद्राओं, वेशों और भंगिमाओं में अंकित 'असंख्य मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ, छायाएँ और चित्रावलियाँ'।

इस प्रकार उनकी रचनाओं ने आधुनिक भारत का इतिहास एक व्यापक संस्कृति के धरातल पर मूर्तिमान हुआ है। इन अनेक मूर्तियों में एक ही मूर्ति भी देखी जा सकती है और इस एक ही मूर्ति में अनेक मूर्तियाँ भी। इनमें एक ही हृदय का अन्वेषण है—मानव-हृदय का अन्वेषण। उस अन्वेषण की पगचाप शब्दों में प्रतिध्वनित है। प्रत्येक पगचाप में शब्द-यात्री का निजी हृदय से स्वर मिल रहा है और उस निजी हृदय का स्वर विश्व-हृदय के साथ मिल जाने को व्याकुल है।

अत: अन्तर्यामी के अन्वेषण में शब्द उनका सहयात्री बन कर चल रहा हैं। दोनों में अभिन्न मैत्री है, दोनों का लक्ष्य एक है। शब्द को हृदय की खोज करनी है, और हृदय को शब्द की। प्रभाकर जी ने शब्द के माध्यम से हृदय को खोजा है और हृदय के माध्यम से शब्द को। यही उनकी साधना है, आराधना है, समाधि है। उनका राष्ट्रीय संघर्षमय जीवन उनकी पत्रकारिता की साधना में साहित्य की कला बनकर प्रकट हुआ है।

शब्द के इस अन्तर्यामी को प्रत्येक पाठक के प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरदास का अवदान

—प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, सागर विश्वविद्यालय

निम्नांकित आठ छन्दों में महाकवि सूरदास के कृतित्व के प्रति कतिपय नवीन विचार गुंफित हैं। पहला छन्द सूर के प्रमुख आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति तथा दूसरा कृष्ण की अनन्य सहचरी राधा के प्रति है। राधा का भी ऐतिहासिक अस्तित्व था। साहित्य के अलावा पुरातात्विक प्रमाणों से भी इसकी पुष्टि हुई है। राधा-कृष्ण की प्रेम-गाथाएँ प्राचीन युग में चंबल नदी से लेकर गोदावरी तट तक के विस्तृत क्षेत्र में अधिक प्रचलित थीं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक पुरानी गाथायें अभी तक सुरक्षित हैं। सूरदास ने भागवत पुराण तथा अन्य कतिपय स्त्रोतग्रंथों के साथ-साथ इन गेयगाथाओं से विशेष प्रेरणा प्राप्त की। उनके समय में ब्रजक्षेत्र तथा विस्तृत विंध्यक्षेत्र के नगरों, गाँवों और शिलागृहों में राधा–कृष्ण की विविध गाथाएँ गूँजती थीं। इसका उल्लेख, ब्रज और ब्रज-वासियों की चर्चा (छंद ३-४ में) करने के बाद, पाँचवें छंद में किया गया है। अगले दो छंदों में सूर की रचनाओं में साहित्य-संगीत का पारंपरिक गुंफन दर्शाया है। अन्तिम दो कवित्तों में सूर का सांस्कृतिक योगदान कथित है।

भारतीय संस्कृति और समाज के प्रति सूर के अवदान का सम्यक् विवेचन अभी अपेक्षित है। सूर उस परंपरा की एक कड़ी थे जिसमें व्यास-वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास, आदि मनीषी उल्लेखनीय हैं।

(१)

अगुन–अनादि ब्रह्म कौ उतारि मथुरा में
सगुन सरूप कौ अमित गान कीन्हों है।
जसुदा के लाल कौ बखान करि भूरि–भूरि
वात्सल्य रस कौ अमर करि दीन्हों है।।
यमुना के कूलन, कदंबन के कुंजन में
नंदनंद–लीला कौ मधुर मर्म चीन्हों है।
गोप अरु गोपिन के प्रान नटनागर को
सूर ह्वै कै निज हिरदय में बास दीन्हों है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) राधा

वृषभानु–नंदिनी के पावन चरित गाइ,
नेह की निकाई कौ नवल रूप दीन्हों है।
बालपन–यौवन औ प्रौढ़ता बखानि नीके,
चारुता, मनोज्ञता, प्रवीणता कौ चीन्हों है॥
प्रेम–योग की पुनीत मूरति कौ धारि हिये,
ब्रज की वसुंधरा कौ राधामय कीन्हों है॥
हाय, वा बियोगिनी के अंसुअन–वारिद सों
पूरो नभ ढाँपि, सारो जग बोरि दीन्हों है॥

(३) ब्रज और ब्रजवासी

गोकुल औ नंदगांव, बरसाना, बृंदावन,
जिनकी चरन–रज धारि कै पुनीत भे।
जिनके सनेही ग्वाल पाइ नेह मोहन कौ,
सुकृतिन मध्य नंदनंदन के मीत भे॥
जिनकौ अमित प्रेम पाइ गोपिकान हू के
मन भे मयूर, गोरे गात नवनीत भे।
तिनके चरित गाइ कवि पायो ज्योति नयी,
सूर के मधुर पद गीतन के गीत भे॥

(४) ब्रज का अमृततत्व

ब्रज अवनी कौ धन्य कियौ सूर जगती में,
कंस के निहंता कौ विरद बगरायौ है।
भगति औ नीति की, प्रतीति–प्रीति–रीतिन कौं,
सरस सलोने–सुठि गीतन में गायौ है॥
प्रकृति की छवि के अनंत रंग–रूपनि कौ
सहज वखानि, रास–रस सों अघायौ है।
नंद–जसुदा के, गोप–गोपिन के, गायन के
अमृत सों छक्यो, तातें अमर कहायौ है॥

(५) साहित्य और संगीत

सीहीं-सूरकुटी-परासौली में निवास करि,
वास कियो स्यामा-स्याम-प्रेमिन के जिय में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रज धाम और ब्रज-बाहर जे गाथा रमीं,
नगरन-गांवन में, सिलाघर-हिय में ।।
उनतें प्रबोध पाइ, पायो ज्ञान ज्ञानिन सों,
सगुन उपासना कौ ज्योति जगी जिय में ।
ब्रज भासा को कियौ सनाथ नाथ-चरित सों,
थाती निज सौंपि देह-नेह प्रिया-प्रिय में ।।

(६)

गेय पद सूर के रमे असेस जन-मन,
पाइ स्याम राधिका सनेह मन भावनौ ।
नाद को प्रवाह सरस्यौ है कविता के मध्य,
ललित कलान कौ विकास भौ सुहावनौ ।।
कलित कलिंदजा की उच्छल तरंगनि में
लस्यौ सूर-काव्य राधा-कृष्ण सुखदायिनौ ।
शब्द-अर्थ कौ सुयोग उमँग्यो है छन्दनि में
रस कौ उछाह उमड्यो है अति पावनौ ।।

(७) सांस्कृतिक अवदान

भारतीय गरिमा कौ सील-सदाचारमय,
जीवन-संदेस सूर बरनित कै गये ।
ललितकला के शिव-सुन्दर प्रबोधनि कौ
मधुमय गेय-प्रेय पदनि में दै गये ।।
व्यास वाल्मीकि भास कालिदास तुलसी को
पावन परम्परा कौ भासमान कै गये ।
वल्लभ की ज्ञान-रासि भक्ति-भावना में ढारि,
कोटि जन कौ उबारि, भूरि जस लै गये ।।

(८)

सूर, तुम मानव की ऋजुता-महानता कौ,
दया-दानसीलता कौ विकरित कै गये ।
प्रेम अरु त्याग की बिसालता बखान करि,
रूप के अनिद्य भाव प्रकटित कै गये ।।
लोकतत्व के उदात्त पच्छनि कौ ऊँचो करि,
प्राणिन में नेह-भाव सुरभित कै गये ।
मानव-प्रकृति बीच समवाय पारिबै को,
गीता को संदेश साँचो मुखरित कै गये ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul.Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासज्ञ श्री डा० सत्यकेतु जी विद्यालंकार

—डा० प्रभात शास्त्री, डी०लिट्०
प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

भारतीय पुनर्जागरण को जो संबल और प्रबल प्रवाह का रूप आर्यसमाज के आन्दोलन ने दिया है, उसका मूल्यांकन कर पाना सम्भव नहीं है। वैदिकधारा से संपृक्त भारतीय मनीषा के मन्तव्यों के सहारे समाजसुधार और आर्षचेतना का उद्घोष करने में इस आन्दोलन का महनीय योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। भारतीय राष्ट्रीयता के साथ इसका सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा। प्राचीन वैदिकज्ञान एवं यज्ञ-याग की विधि के पुनर्प्रचलन के इसके प्रयास का एक उज्ज्वल पक्ष है। इसी के साथ वैदिकपद्धति का अभिनव रूप गुरुकुल कांगड़ी जैसे शिक्षणकेन्द्र हैं। इन संस्थाओं ने न केवल वेद के पारंगत विद्वानों को संरक्षण एवं प्रश्रय दिया, वरन् इसने प्राचीन आयुर्वेद एवं अन्यान्य वैदिक विद्याओं और उनके स्वरूपों को संरचित करने का प्रयास किया है। ऐसी परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में सत्यकेतु विद्यालंकार का व्यक्तित्व हमारे लिए प्रेरक एवं अभिनन्दनीय है।

१६ सितम्बर १६०३ में सहारनपुर में जन्मे श्री सत्यकेतु जी ऐसे बिरले विद्वान् हैं जिनका वैश्विकज्ञान अपरिमित है। पेरिस विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उच्च उपाधि प्राप्त करके आपने साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ किया। फलतः आपके विशद अध्ययन एवं लोकनिरीक्षण के परिणामस्वरूप अनेक ऐसे मानकग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिनसे हिन्दी समृद्ध हुई। विशेषरूप से भारतीय इतिहास के क्षेत्र में आपके अवदान को हिन्दी जगत् ने महत्वपूर्ण माना और संवत् १६८६ में आपको "मौर्य साम्राज्य का इतिहास" पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उस समय का सर्वोच्च पुरस्कार मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया। एक सफल इतिहासकार के रूप में सत्यकेतु जी ने अपना विशेष स्थान बनाया है। आपके इतिहाससम्बन्धी खोजपूर्ण कार्यों की अपनी विशेषता है। ऐतिहासिक तथ्यों की संगति के साथ प्रवहमान भारतीय संस्कृति की मूलचेतना से पाठक को संपृक्त करते हुए आप युगसन्दर्भ के साथ अतीत का स्वस्थ सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं। यह इतिहासदृष्टि प्रायः पश्चिम विद्वानों में नहीं थी। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, श्री हेमचन्द्र जोशी, डा० रघुबीर, डा० सम्पूर्णानन्द और आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे मनीषियों एवं इतिहासज्ञों की पंक्ति में सत्यकेतु विद्यालंकार जी की इतिहासदृष्टि पर विचार करना समीचीन रहेगा। बौद्ध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल का राजनीतिक इतिहास, भारत का इतिहास, अपने देश की कथा, भारत का प्राचीन इतिहास, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और नया संविधान, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों के माध्यम से आपने भारतीय इतिहास के उत्थान-पतन की गाथा को सुश्रृंखलित किया है।

जैसा प्रारम्भ में कहा गया है आपका अनुभव वैश्विक है। आपने एशिया और यूरोप के देशों का भ्रमण करके प्रचुर अनुभव प्राप्त किया और इसी आधार पर अपने देश और विश्व के राजनीतिक दर्शन, संविधान और वहाँ के जनजीवन का परिचय प्रस्तुत किया है। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने कालचक्र को प्रभावित किया था। आपने इस विषय पर हिन्दी में उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रणयन करके जहाँ राष्ट्रभाषा के भण्डार को समृद्ध किया है, वहीं भारतीय राष्ट्रीयता के संघर्ष को भी प्रेरणा से अनुप्राणित किया था।

श्री विद्यालंकार जी सफल उपन्यासकार भी हैं। आचार्य चाणक्य, पतन और उत्थान, अन्तर्दाह, कंपनी का मैनेजिंग डायरेक्टर, होटल मार्डन, आदि आपकी औपन्यासिक कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। फ्रान्सीसी साहित्य के आधुनिक रचनाकार मोपासां की कहानियों का अनुवाद भी आपने किया है।

उत्तरप्रदेश विधान परिषद् के सम्मानित सदस्य तथा अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में आपने अनेक जनोपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक कार्यों का निष्पादन किया है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को सप्राण बनाने में आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार जी एक जागरूक इतिहासज्ञ, राजनीतिक एवं संवैधानिक विषयों के व्याख्याता एवं प्रवक्ता के रूप में समादृत हैं। उनके वैदुष्य का सम्मान करके हम अपने को ही गौरवान्वित करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत की मुद्राएँ

—डा० जबरसिंह सेंगर
रीडर, प्रा०भा० इति० विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन काल में जब गिनती का आविष्कार नहीं हुआ था, तो अंगुलियों का इशारा कर तथा उसके परे बहुत सारी गणना शब्द से हो जाया करती थी। इसी प्रकार वस्तुओं का आदान–प्रदान जिसे अंग्रेजी में बार्टर शब्द कहा गया है, होता था। ५ किलो गेहूँ देकर एक किसान जूते पहन लेता था। पर मनुष्य विकासशील विचारों का है, अतएव उसने एक क्रय-विक्रय का माध्यम मुद्रा चुना। पाश्चात्य विद्वान, भारतीयों के बारे में एक भ्रम फैलाते रहे कि भारतीयों ने लिपि एवं सिक्के बनाने का ढंग विदेशियों से सीखा। एक दलील लिपि के बारे में यह दी गई कि लिपि हम भारतीयों ने फिनिशिया से सीखी। पर मोहन जोदड़ो से जो सीलें मिलीं एवं जो लिपि उन सीलों पर उत्कीर्ण है (हालाँकि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी) उससे स्पष्ट हो गया कि भारत को लिपि सीखने के लिए विदेशियों का सहारा नहीं लेना पड़ा। इसी प्रकार मुद्रा अर्थात् सिक्कों के विषय में यह कहा गया कि भारत ने लिडिया से सिक्के बनाना सीखा। लीडिया का सबसे पुराना सिक्का ७०० ई० पू० का वहाँ उपलब्ध है।

भारत के प्राचीन सिक्कों की तौल और बनावट का ढंग बिल्कुल अलग है। यह किसी भी देश के सिक्कों से मिलावट नहीं खाता है। दूसरी दलील यह दी जाती है कि ईरान के सम्राट दारा ने जब गांधार, पेशावर आदि पश्चिमोत्तर भारत पर कब्जा किया था तो उनसे भारतीयों ने सिक्के बनाना सीखा। विद्वान ऐलन ने भी इस भ्रम को साकार करने में मदद दी। दारा के सिक्कों से दूनी तौल के भारतीयों ने सिक्के ढ़लवाए। गाँधार के पास घिसे सिक्के (सिगलास) प्राप्त हुए हैं जो भारतीय सिक्कों से तौल में आधे हैं। विद्वान वासुदेव शरण अग्रवाल ने विभिन्न तौलों के आधार पर ऐलन के मत का खंडन किया है। जहाँ तक सिक्कों के प्रचलन का प्रश्न है, साहित्यसाक्ष्यों के आधार पर गौतम बुद्ध से पूर्व सिक्कों का प्रचलन था। पूर्व में चाँदी के टुकड़ों से मुद्रा का काम लिया जाता रहा होगा। पर जब प्रचलन बढ़ा तो आवश्यक हो गया कि ठीक नाप-तौल एवं एक विशेष चिन्ह बनाया जाए जिसको सार्वभौम सत्ता भी मान्यता दे। तदनुसार ये टुकड़े, चिन्ह एवं नाप-तौल के अनुसार निर्मित होकर सिक्कों की संज्ञा में आ गए। महात्मा गौतम बुद्ध के काल में सिक्कों की तौल ४० और २५ रत्ती की होती थी। यथा—तदा राजगहे वीसति मासको कहापणों होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मात् पंचमासको पादो ।'[1] मनु महाराज ने भी इसी प्रकार उल्लेख किया है —

'द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषक ।'[2]

पांचाल नरेश के छटी शती के सिक्के का आकार सुडौल वृत्ताकार नहीं है। इस पर न कोई अक्षर है और न राजा की मूर्ति है। कुछ चिन्ह एवं ४ बैल बने हैं। इन सिक्कों को 'पंच मार्क' सिक्कों की संज्ञा दी गई। पाणिनी ने 'आहत रूप्य[3]' शब्द का प्रयोग सिक्के के लिए किया है। इस सिक्के की तौल लगभग २५ रत्ती थी। इसी प्रकार एक चौकोर मुद्रा पाँचवीं शती ई० पू०, नन्द वंश के किसी शासक की मिली है। इसमें कुछ चिन्ह एक-दूसरे पर चढ़े हुए तथा सूर्यचिन्ह, षडर चक्र, हाथी, कुत्ता एवं खजूर का पेड़ अंकित है। इसकी तौल ३२ रत्ती है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'पण' शब्द से मुद्रा को पुकारा है। मनुस्मृति में इसी को 'कार्षापण' कहा गया है। तक्षशिला में १०५९ सिक्के भारतीय तथा २ ताजे सिकन्दर के सिक्के खुदाई में प्राप्त हुए। इससे यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भारतीय शासक सिक्के ढलवाते थे। बुद्ध से पूर्व सिक्के ४० और २५ रत्ती के, फिर नन्द और मौर्य वंश के समय में ३२ रत्ती के सिक्के प्रचलित हुए। यवन (इंडोग्रीक) राजाओं ने अपने सिक्कों पर राजा की मूर्ति, उपाधि एवं नाम अंकित करवाया। इसी का अनुकरण शक एव शुंग शासकों ने भी किया। मौर्यशासक के एक सिक्के पर ब्राह्मी लिपि अंकित है। इसी प्रकार पंजाब के एक शक राजा के सिक्के में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग है एवं भाषा प्राकृत है। पांचाल के शुंग राजा जयमित्र का ई० पू० दूसरी शती का ताँबे का सिक्का मिला है जिस पर ब्राह्मी अक्षरों में 'जयमित्रस' लिखा है। इसी प्रकार शूरसेन नरेश गोमित्र के ताँबे की मुद्रा में कृष्ण की मूर्ति बाँसुरी लिए बनी है। ब्राह्मी में 'गोमित्रस' लिखा है।

प्रथम शती ई० में कुषाण शासकों के सिक्के बहुत प्रचलित हुए। ओइम कडफिसस का सोने का सिक्का बहुत प्रचलित था। इस पर 'राजाधिराज ओइम कडफिसस' अंकित है। दूसरी ओर शिव दाहिने हाथ में त्रिशूल एवं बाएँ हाथ में कमंडल लिए दर्शाए गये हैं। इसी प्रकार से ताँबे, सोने के कुषाणकालीन सिक्के पर्याप्त मात्रा में मिले हैं। कुषाणों के सिक्के अफगानिस्तान से लेकर पूरे भारत एवं रूस की सीमा तक प्रचलित थे, क्योंकि पर्याप्त मात्रा में कुषाणकालीन सिक्के इस भू-भाग से प्राप्त हुए हैं।

कुषाणों के बाद स्वर्णयुग के शासक गुप्तवंशीय शासक आते हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम का सिक्का जिसमें कुमारदेवी भी खड़ी है, भारतीय वेशभूषा में पत्नी को आभूषण देते हुए दिखाए गए हैं। सिक्के के ऊपर च गु ऊपर से नीचे लिखा गया है। ये सोने के सिक्के ८
न्द्र प्त

१— विनयपिटक पाराजिका — २
२— मनुस्मृति — ८/१३५
३— अष्टा० — ५/२/१२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माशे के बनने लगे थे। सिक्के की पृष्ठिका पर 'लिच्छिव' शब्द लिखा है जो तत्कालीन वैदेशिक नीति को सुदृढ़ करता है। इसी प्रकार से अनेक सिक्के—समुद्रगुप्त के अश्वमेघ यज्ञ का द्योतक घोड़े वाला सिक्का, वीणावादक आदि तया चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिंह निहंता आदि के साथ-साथ कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त के बहुत सिक्के भारतीय वेशभूषा के साथ दर्शाए गए हैं।

नवीं शती में ब्राह्मण राजा श्री सामन्तदेव का चाँदी का सिक्का उल्लेखनीय है। सिक्के पर एक ओर नन्दी बैठा हुआ है, दूसरी ओर घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति है। इस शैली के सिक्के दिल्ली शासकों के बारहवीं शती तक मिलते रहे। कन्नौज के राजा भोज के चाँदी के सिक्के पर वाराह अवतार की शूकरमुखी प्रतिमा बनी है। दूसरी ओर देवनागरी में 'श्री मदादि वराह' लिखा है। ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ में महमूद गजनवी ने चाँदी का सिक्का ढलवाया – एक ओर अरबी में कलमा—"ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मद रसूल इल्लाह, अल अमीर महमूद" दूसरी ओर संस्कृत में—"अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद"[1] लिखा है। इस काल में संस्कृतभाषा का पर्याप्त सम्मान था। राजपूत-काल के शासकों ने संस्कृतभाषा को काफी सम्मान दिया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय में भी काफी मात्रा में सिक्के हैं। इन सिक्कों में इंडोग्रीक सिक्कों को छोड़कर शेष सामग्री भारतीयता से ओत-प्रोत है। सिक्कों पर भी भारतीय संस्कृति, धर्म एवं सम्पन्नता परिलक्षित होती है।

१—'अयं टक' महमूदपुर घटिते हिजरियेन संवति ४१८'—इस प्रकार भी कुछ विद्वान मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्ववाद

—डा० यू०एस० बिष्ट
प्राध्यापक, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

१८वीं शताब्दी में जो नवीनज्ञान अपने शैशव की किलकारियों को छोड़कर प्रौढ़ावस्था में पदार्पण कर रहा था, अस्तित्ववाद उसी के विरुद्ध एक 'विरोध पत्र' था। जर्मन रूमानियत में अंकुरित अस्तित्ववाद के जनक होने का श्रेय डेनमार्क निवासी सॉरेन कीर्किगार्द तथा जर्मन नीतिशास्त्री फेड्रिक नीत्शे को जाता है। ज्यां पाल सार्त्र तथा यास्पर्स का नाम भी अस्तित्ववादी दर्शन में उल्लेखनीय है। वास्तव में सार्त्र ही एकमात्र ऐसे अस्तित्ववादी हैं जिन्होंने स्वयं को अस्तित्ववादी घोषित करने में संकोच नहीं किया।

प्रस्तुत लेख में, मैं सॉरेन कीर्किगार्द की अस्तित्ववादी विचारधारा का मात्र उल्लेख करते हुए, ज्यां पाल सार्त्र की रोचक विलक्षणता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करूँगा। ऐसा मैं अपने सीमित ज्ञान, समय एवं लेख की सीमा के उल्लंघन के भय से कर रहा हूँ। उचित अवसर प्राप्त होने पर यास्पर्स महोदय के बारे में कुछ कह सकूं, ऐसा प्रयास करूँगा। हो सकता है कतिपय दार्शनिकों को, जैसा कई स्थलों पर होता है, सार्त्र सम्बन्धी मेरी विचारधारा अस्पष्ट, अधूरी या व्यर्थ लगे, अतः लेख को ज्ञानानुराग समझ कर ही अपनी सम्मति बनायें, ऐसी प्रार्थना है।

'अस्तित्ववाद' की मुख्य समस्या "सत्तावान होने' के अर्थ को समझने तथा मानवीय क्रियाओं के आधार की खोज है।"

इसका मुख्य उद्देश्य उन शर्तों का निदान और वर्णन करना है, जिनमें रहते हुए मनुष्य विभिन्न क्रियाएँ करता है। अपने 'तत्त्वचिन्तन' का शुभारम्भ, अस्तित्ववाद 'मानवीय-चेतना के वर्णन' से करता है। अर्थात् यह वाद मानवीयव्यवहार के इर्द-गिर्द ही घूमता है। कालीदास एवं शेक्सपेयर के समान ऊँची उड़ान या शंकराचार्य की तरह 'ब्रह्म' जैसे प्रत्ययों को यह निरर्थक एवं अव्यवहारिक तथा आत्मवंचना ही समझता है।

'व्यक्ति होने' का क्या अर्थ है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये इन्होंने 'चेतना' (Consciousness) को माध्यम बनाया। 'चेतना' को इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्रियाशील', 'इच्छाशक्ति' तथा 'निश्चय करने वाली चेतना' के रूप में समझा है। नैसे 'अमूर्त अनैयक्तिक' विचारण के मूल्य को कीर्किगार्द अस्वीकार नहीं करते, लेकिन इस मूल्य को वह 'मानवीय-स्थिति' पर लागू करने के प्रयास को 'अंधेरे में लाठी घुमाने' के समान समझता है। उसकी मान्यता है कि अनैयक्तिक विचारणा (सार=essence) की अमूर्ततायें अस्तित्व के बाद (after) हैं। मैं समझता हूँ कीर्किगार्द की इस मान्यता का जन्म विचाररहित चर्चगामी धार्मिकों एवं हीगलवादी दृष्टिकोणों के परिणामस्वरूप ही हुआ। यह बात उसकी निम्न पंक्ति से स्पष्ट होती है —'चर्चगामियों' को प्रथमतः 'इसाई बनना' सीखना चाहिए तथा हीगलवादियों को वैयक्तिक-दार्शनिक-दृष्टिकोण से ऊपर उठना चाहिए।

वे पुनः कहते हैं अस्तित्ववान विषयी (subject) विज्ञान का पूर्ववर्त्ती होने के कारण किसी वैज्ञानिक वस्तु के रूप में स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकता। उन्हीं के शब्दों में— "विज्ञान को पौधों, पशुओं तथा तारों के बारे में ही विवेचन करने दिया जाय, किन्तु 'मानव-भावना' के संदर्भ में (regarding spirit) उस तरह विवेचन करना घृणास्पद एवं अधार्मिक है।" कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य तक पहुँचने के लिए, कीर्किगाद 'अस्तित्वों' को तिरस्कृत करके 'सार-समूहों' पर ध्यान केन्द्रित करने को मूर्खता समझते हैं। यदि ऐसा किया जाए तो 'वे सत्य' जो हमसे सदा जुड़े हुए रहते हैं, कभी भी हमें प्राप्त न हो सकेंगे, क्योंकि सत्य अस्तित्व से बँधा रहता है न कि सार-समूह से।

स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि कीर्किगार्द के लिए सत्य वह है जो विषयगत (subjective) हो तथा जिसे हम प्रयत्न करके जानते तथा ग्रहण करते हैं।

हीगल द्वारा इसाईयत को तर्कसंगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर प्रहार करते हुए कीर्किगार्द कहते हैं कि कल्पनात्मक दर्शनशास्त्र हमें केवल खोखली कल्पना ही करा सकता है, हमारा मार्गदर्शन तो हमारी नैराश्यजनित गहन-भावनाएँ करती हैं। ये गहन-भावनाएँ तात्त्विक दृष्टि से प्रकाशजनक होती हैं।

इस प्रकार कीर्किगार्द के चिन्तन-सार को यदि एक शब्द में "इसाईयत" कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

अस्तित्ववादी गगन में नीत्शे नामक तारा भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। इन महोदय की समस्या थी कि ये 'नास्तिक के रूप में कैसे जियें ?' इन्हीं के शब्दों में—"यह बात दरअसल महत्वपूर्ण है और इससे ही सारा फर्क पड़ता है कि क्या एक विचारक अपनी उन समस्याओं के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध रखता है जिनसे वह अपना भविष्य, अपनी आवश्यकता और अपनी उच्चतम प्रसन्नता देखना चाहता है, अथवा वह उन्हें केवल अवैयक्तिक रूप से सूक्ष्म निरीक्षणदृष्टि के पंजों की पकड़ में लेकर अनुभव करना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है।" ऐसा इसलिये नहीं कि मनुष्य के बारे में हमारा ज्ञान अपर्याप्त है, अपितु इसलिये कि मनुष्य अपनी सत्ता में निरन्तर एक प्रश्न बना रहता है, और इस प्रश्न का सुनिश्चित आधारयुक्त एवं प्रमाणिक एक उत्तर हो ही नहीं सकता। इस प्रकार अस्तित्ववादी दर्शन का प्रमुख प्रयोजन 'मनुष्य के अस्तित्व की मूलसंरचना का विश्लेषण करना तथा उसके मूल स्वतंत्र अस्तित्व का बोध करना है।'

अस्तित्ववाद के अनुसार 'अस्तित्व' व्यक्तिगत अभियान का विषय एवं विचार से परे है। इस अभियान में व्यक्ति अपनी मूलस्वतांत्रता का बोध करता है। मनुष्य, मनुष्य का भविष्य है। मनुष्य का कार्य ही उसका स्वरूप है। अतः मनुष्य अपने स्वरूप, अपने सार का निर्धारण अपने 'कार्यो' द्वारा करता है। यही विचार अस्तित्ववाद को मूलतः अन्य दार्शनिकविचारों या सिद्धान्तों से पृथक करता है।

दर्शन, मनोविज्ञान, नाटकों तथा उपन्यासों पर समान अधिकार रखने वाले फ्रांसिसी दार्शनिक सार्त्र का जन्म सन् १९०५ में पेरिस में हुआ। 'बीइंग एण्ड नथिङ्गनैस' इमेजिनेशन, दि एक्जिस्टेंसियलिज्म एज ह्यूमैनिज्म, दि ट्रांसिन्डेंस आव दि ईगो' आदि अनेक दार्शनिक ग्रंथों के लेखन के साथ-साथ नो एग्जिट, दि फ्लाइज तथा डर्टी-हैण्ड्स जैसे नाटकों के लिये आपने विभिन्न पुरस्कार प्राप्त किये। दि 'एक्जिस्टेंसियलिज्म एज ह्यूमैनिज्म' नामक ग्रंथ में इन्होंने अस्तित्ववाद पर लगाये गये आरोपों का धमाकेदार खण्डन किया।

"अस्तित्व, सार का पूर्वगामी है" अस्तित्ववाद की इस आधारिक परिभाषा का श्रेय भी आपको ही प्राप्त है। इन्होंने बताया कि मनुष्य को कुर्सी, मेज आदि जैसी वस्तुओं का दर्जा देना मूर्खता है। वे पुनः कहते हैं उनकी यह परिभाषा मानवीय वास्तविकता पर ही लागू होती है, वस्तुओं पर नहीं, क्योंकि मानवीय अस्तित्व की समस्यायें, सैद्धान्तिक समस्यायें नहीं हैं। इसी संदर्भ में वे बताते हैं कि दर्शन का लक्ष्य सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन न होकर, 'मनुष्य होने का क्या अर्थ है' जैसा सार्थक प्रश्न पूछना तथा इसके उत्तर के लिये क्रियाशील होना है।

सार्त्र के अनुसार 'अनुभवातीत आत्मा' का प्रत्यय अनावश्यक एवं भ्रमित करने वाला है। ऐसी आत्मा, चेतना को विभक्त कर देती है। 'बीइंग एण्ड नथिङ्गनैस' में सार्त्र ने लिखा है :-" If it existed, it would tear consciousness from itself; it would divide consciousness." इनके विचार में आत्मा शुद्धरूप से 'विषयापेक्षी' है। यह चेतना में नहीं बल्कि जगत में निवास करती है। अन्य व्यक्ति की आत्मा की भांति आत्मा जगत की सत्ता है। यह आत्मा न तो स्वयं विषय (वस्तु) है और न ही विषयरूप में इसका ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार सार्त्र की स्वनिमित्त चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचिंतनपूर्वी चेतना है। यह चेतना मूलतः 'ज्ञाता चेतना' न होकर क्रियाशील तथा अनुभूति कराने वाली चेतना है। यह वस्तुजगत में ही सक्रिय तथा वस्तुओं के मध्य पायी जाती है। चूँकि यह चेतना 'अवस्तु' है, इसीलिए वस्तुजगत की विविधता की रचना करती है। अर्थात् सत्ता को अर्थ देती है। यहाँ रचना का अर्थ उत्पन्न करना नहीं है। अवस्तुत्व हमारे अनुभव का विषय है न कि निर्णय का गुण। चेतना की निषेधक्रिया का परिणाम ही 'अवस्तुत्व' है। उल्लेखनीय है कि यही निषेधक्रिया मनुष्यों को अन्य सत्ताओं से पृथक करती है, तथा यही गुण मनुष्य की मूलस्वतंत्रता के लिये उत्तरदायी है।

अवस्तुत्व के लक्षण के संदर्भ में सार्त्र का मानना है कि हमें केवल वस्तुओं का ही नहीं, अपितु अवस्तुओं का भी प्रत्यक्ष होता है। दूसरे शब्दों में हम भाव एवं अभाव दोनों का प्रत्यक्ष करते हैं। अर्थात्, असत्ता सत्ता की परवर्त्ती है' तथा अपने अस्तित्व के लिए सत्ता पर निर्भर करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं सार्त्र का अवस्तु सम्बन्धी सिद्धान्त मानवीय स्वातंत्र्य का सिद्धान्त है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना समीचीन है कि सार्त्र चेतना, आत्मा या मनुष्य को वस्तु नहीं कहते जो उचित भी लगता है। यदि इनको वस्तुओं की श्रेणी में रख दिया जाये तो इन्हें भी प्रकृतजगत की घटनाओं की भाँति नियंत्रित होना चाहिए; लेकिन ऐसा नहीं होता। मनुष्य को 'A being who is not what he is, who is, what he is not' प्रकार से परिभाषित करते हैं। अर्थात् "मनुष्य जो है, वह नहीं है तथा जो नहीं है, वह है"। इस परिभाषा को इस प्रकार समझा जा सकता है—सत्तावान होने की अवस्था में मनुष्य (मैं) अपने अतीत को, अपने विचार का विषय बनाता है, उसका परीक्षण करता है। दूसरे शब्दों में—'अपने अतीत के सन्दर्भ में मनुष्य (मैं) विषयों का दृष्टा है तथा अतीत उसका विषय है, अर्थात् वह अतीत का अतिक्रमण करते हुए "मैं नहीं" के रूप में स्थापना करता है। अपना अतीत होते हुए भी मनुष्य (मैं) अपना अतीत नही होता।

इसी प्रकार मनुष्य अपना भविष्य है भी और नहीं भी है। वह अपना भविष्य है क्योंकि वह उसका अपना है, उसके द्वारा निर्मित है। किन्तु 'होने के प्रकार' के रूप में वह अपना भविष्य नहीं, क्योंकि उसे अभी 'होना है'। अतः मनुष्य अपना 'अतीत एवं भविष्य' 'है भी' और 'नहीं भी'। उसके 'वर्तमान तथा अतीत' तथा 'वर्तमान तथा भविष्य' के बीच 'कुछ भी नहीं' (Nothing) खड़ा है।

सार्त्र का दर्शन बताता है कि "मनुष्य को स्वतंत्र होना चाहिए"। यहाँ यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि सार्त्र 'स्वतंत्रता' को 'मानवीय वास्तविकता' का पर्यायवाची मानते हुए कहते हैं—"मनुष्य पूर्णतया तथा नित्य स्वतंत्र है। मनुष्य अथवा चेतना "अवस्तुत्व है, सत्ता का अभाव है, सत्ता में छिद्र है।" अर्थात् सार्त्र-दर्शनानुसार मनुष्य का कोई 'सार-तत्त्व' नहीं होता, वह अपना निर्माणकर्त्ता स्वयं है। चूँकि वह अपने मूल्यों की स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना करता है, अतः यह कहा जा सकता है कि मूल्यों का आविर्भाव मानवीय वास्तविकता के साथ ही होता है।

दूसरी ओर सार्त्र मनुष्य की अपने कार्यों के लिये कारणों के तलाश की प्रवृत्ति को समझाना आवश्यक समझते हैं। इस प्रवृत्ति को वे 'मनुष्य की दुरास्था' कहते हैं। 'दुरास्था' का सहारा लेकर मनुष्य 'उत्तरदायित्व' से उत्पन्न चिन्ता तथा चिन्ताजन्य क्लेश से मुक्ति पाने के लिये छटपटाता है। इस छटपटाहट में वह बहुत बहाने ढूँढ़ता है। बहानों की इस ढूँढ़-खोज को ही सार्त्र 'दुरास्था' (Bad-Faith) की संज्ञा देते हैं।

सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि मनुष्य द्वारा सही स्थिति को नजर-अन्दाज करते हुये उसके वास्तविक अर्थ को ग्रहण न कर, उसे अन्य रूप में प्रस्तुत करने के लिये बहानों की तलाश ही 'दुरास्था' है। इस प्रकार की आत्म-प्रवंचना को सार्त्र 'आत्म-निहित-झूठ' कहते हैं :—

"Bad-Faith does not come from outside to human reality. One does not undergo his bad faith; one is not injected with it, it is not a state. But consciousness affects itself with bad faith ...... the one to whom the lie is told and the one who lies are one and the same person." [B.N. p-49].

स्वयं सार्त्र 'दुरास्था' शब्द को अधिक स्पष्ट करने के लिये कई दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। चूँकि 'मनुष्य की दुरास्था' को ही वे 'आत्म-प्रवंचना' के लिये उत्तरदायी मानते हैं, अतः सार्त्र प्रदत्त निम्न उदाहरण से इसको उचित प्रकार से समझा जा सकता है—

"एक भद्र महिला अपने किसी (मात्र प्रसंग से परिचित) पुरुष मित्र के साथ पहली बार सम्पर्क में आती है। (अधिक विस्तार से न कहते हुये) वह भद्र पुरुष, महिला में विभिन्न प्रकारेण अपनी रुचि दिखाता है। भद्र महिला, पुरुष की शीघ्र-रुचि, काम-भावना तथा स्वयं अन्त में, पुरुष की काम-भावना को ध्यान में रखते हुये निर्णय की आवश्यकता को शत-प्रतिशत समझते हुए भी, ऐसा प्रदर्शित कर रही है कि वह पुरुष के कामुक व्यवहार से अपरिचित है तथा उसकी बातों का मात्र (अभिधार्थ) सत् अर्थ ही जान रही है। अपनी सहमति या असहमति इसलिए नहीं देती है कि वह यह नहीं जानती कि स्वयं वह क्या चाहती है। हाँ, वह अपनी कामोत्तेजक मनःस्थिति को जानती है लेकिन उसके नग्नरूप को स्वीकार करने से घबराती है। क्या उक्त महिला 'दुरास्थाग्रस्त' नहीं है?"

कहने का तात्पर्य यह कि सार्त्र की सम्मति में 'ईश्वर का प्रत्यय' विषयगत (subjective) नहीं है। प्रयत्न करने पर भी न वह जाना जा सकता है न ही ग्रहण किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है, अतः 'ईश्वर मृत' है। यदि वह होता तो अस्तित्ववान होता, क्योंकि प्रत्येक 'सत्य' अस्तित्वों से बँधे रहते हैं। अतः 'अस्तित्वों' को नकार कर 'सार समूहों' पर ध्यान देना, अपने आप को धोखा देने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

सारांशरूप में कहा जा सकता है कि अस्तित्ववाद, मनुष्य को उसके वास्तविक अस्तित्व तथा अस्तित्वगत प्रश्नों के सामने खड़ा करने का ही नाम है। विज्ञानवाद पर आरोप लगाते हुए सार्त्र कहते हैं कि इसमें तो मनुष्य के वास्तविक जीवन की समस्याओं को नकार दिया गया है। विज्ञानवाद, मृत्यु को मनुष्य-जीवन की समस्या ही नहीं मानता। क्योंकि इसकी (विज्ञानवाद) दृष्टि में 'आत्मा, मृत्यु से परे है'। सार्त्र के कथनानुसार, तत्त्वमीमांसीय उदात्त सिद्धान्त, मनुष्य के वास्तविक जीवन से मृत्यु-जन्म भय तथा अन्य चिन्ताओं को मिटाने में पूर्णतः असफल हैं। मृत्यु मानवीय अस्तित्व की अपरिहार्य नियति है। मृत्यु को मात्र 'मिथ्या' कह देने से उससे छुटकारा नहीं मिल जाता।

सार्त्र के अनुसार मनुष्य को अनेक वस्तुओं के बीच एक वस्तु के रूप में देखना बहुत बड़ी भूल है। क्योंकि ऐसा करने से मेज, कुर्सी आदि भौतिक पदार्थों की तरह वह भी अपनी सत्ता में सीमित हो जायेगा। जिसका परिणाम यह होगा कि न तो वह अन्य किसी वस्तु को जान पायेगा और न ही उनके साथ कोई सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। व्यवहार में हम देखते हैं कि मनुष्य को अन्य वस्तुओं को जानने का सामर्थ्य प्राप्त है, वह अमुक-अमुक वस्तुओं से अपने सम्बन्ध स्थापित करता रहता है, फिर उसे भौतिक पदार्थों की तरह कैसे समझा जा सकता है? इसका अर्थ यह भी नहीं कि मनुष्य निरपेक्ष सत् या शुद्ध चेतना है, जैसा कि विज्ञानवादी मानते हैं। अस्तित्ववादी तो वास्तविक मानव-अस्तित्व पर बल देता है; अर्थात् जगत् स्थित मानव - अस्तित्व को ही यथार्थ समझता है। मनुष्य का जगत से सम्बन्ध, 'सत्ता का सम्बन्ध' है, जिसमें 'विषयी' अपना शरीर है, अपना जगत् है, अपनी परिस्थिति है। इसी बात को पोंटी सेन्स और नॉनसेन्स नामक अपनी पुस्तक में इस प्रकार से लिखते हैं :

"The relationship between subject and object is no longer that relationship of knowing postulated by classical idealism.........but a relationship of being, in which paradoxically, the subject is his body, his world and his situation by a sort of exchange."

"सार अस्तित्व का पूर्वगामी है' जैसी विज्ञानवादी मान्यता सार्त्र की सम्मति में भौतिक पदार्थों जैसे कुर्सी, मेज आदि पर ही लागू हो सकती है। कुर्सी का निर्माण बढ़ई करता है। इसकी प्रेरणा उसे कुर्सी के प्रत्यय से मिलती है। उस प्रत्यय को वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने निर्माणकौशल द्वारा वस्तु (कुर्सी) का रूप प्रदान करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुर्सी का 'अस्तित्व' उसके 'सार' द्वारा निर्धारित होता है। यह बात सभी भौतिक पदार्थों पर समान रूप से लागू होती है लेकिन मनुष्य पर नहीं, क्योंकि मनुष्य के संदर्भ में तो 'अस्तित्व ही सार का पूर्वगामी होता है।' प्रसिद्ध शायर गालिब के शब्दों में —

" ऐ खुदा ! हम हैं,
इसीलिये तेरे होने का भ्रम होता है।
नहीं होते, तो तेरी हस्ती को कौन पूछता।"

उपरोक्त विचारधारा के कारण ही अस्तित्ववाद, आधुनिक समय में जहाँ लोकप्रिय होता जा रहा है वहीं वह आरोपों के बंधनों में छटपटाहट लिये हुए है। सार्त्र की प्रमुख कृति 'Being And Nothingness' को जहर कहकर उसको न पढ़ने की चेतावनी देने में कैथोलिक चर्च ने बिल्कुल देर न लगाई। अस्तित्ववाद को Logical Positivism से भी अधिक खतरनाक बताया गया, क्योंकि इसमें सृष्टि-कर्त्ता के रूप में ईश्वर को निराधार बताया गया है। ईश्वर को निराधार बताने के अपने दावे के पक्ष में अस्तित्ववादी कहते हैं यदि ईश्वर पूर्ण स्वतंत्र है तथा नित्य है तो वह परतंत्र एवं अनित्य मनुष्य की रचना क्यों करता ? और यदि तथाकथित ईश्वर की सृष्टि आंतरिकरूप से ईश्वर पर निर्भर करती है, तो ईश्वर को पूर्ण एवं एक पृथक सत्ता के रूप में कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? अतः, या तो मनुष्य, ईश्वर-परतंत्र है (स्वतंत्र नहीं है) या स्वतंत्र है। स्वतंत्र मानने पर उसको ईश्वर की आवश्यकता क्यों ?

ठीक से देखने पर पता चलता है कि 'मनुष्य की स्वतंत्रता' ही सार्त्र–दर्शन का मुख्यबिन्दु एवं आधार है। वह मनुष्य की सत्ता तथा स्वतंत्रता को पर्यायवाची मानता है। लाइबनित्स के 'पूर्वस्थापित सामंजस्य' (Pre-established-harmony) जिसके अनुसार, मनुष्य का सारतत्त्व ईश्वर द्वारा निर्धारित होना बताया गया है, की आलोचना करते हुए सार्त्र कहते हैं कि यदि मनुष्य के जीवन की सामान्य रूपरेखा पूर्वनिर्धारित है तो उस निर्धारण के बीच 'मनुष्य के स्वतंत्र आचरण' की बात करना तर्कहीन ही नहीं, अर्थहीन भी है। परतंत्रता में स्वतंत्रता की कल्पना खोखली है। यही कारण है कि 'मनुष्य की स्वतंत्रता' के लिये, सार्त्र ने 'ईश्वर' को मृत घोषित कर दिया।

इस प्रकार विभिन्न असंगतियों के बावजूद भी अस्तित्ववाद को 'निष्क्रियता का दर्शन' नहीं कहा जा सकता। इसके अनुसार तो 'कर्मों के अतिरिक्त कोई वास्तविकता ही नहीं है'। मनुष्य अपनी योजनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अपनी असफलताओं के लिये बहाने ढूँढ़ने वाले लोग ही अस्तित्ववाद की आलोचना करते हैं। एक निरर्थक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासना के रूप में, ईश्वर के उत्पन्न या पैदा होने के लिये, अपने अस्तित्व को मिटा देते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. बीइंग एण्ड नथिङ्गनैस — सार्त्र

2. एक्जिस्टेंसियलिज्म एज ह्यूमनिज्म — सार्त्र

3. एक्जिस्टेंसियलिज्म एण्ड ह्यूमन इमोशन्स–विस्डम लाइब्रेरी

4. समकालीन पाश्चात्य दर्शन – लक्ष्मी सक्सेना

5. दर्शन के सौ वर्ष—जॉन पासमोर

6. अस्तित्ववाद पर अपने नोट्स।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के स्तनपोषी जन्तु

—डा० बी०डी० जोशी
अध्यक्ष, जन्तुविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतवर्ष की सम्पूर्ण उत्तरी सीमा को अंकित करने वाला, संसार के सब पर्वतों का स्वामी हिमालय हमारे लिए प्रकृति की ओर से अनुपम उपहार है। हिमालय का वनस्पति तथा जन्तुजगत वहाँ के निवासियों का, वहाँ भ्रमण के लिए आने-जाने वाले यात्रियों का तथा वैज्ञानिकों का चित्त सदा से ही आकर्षित करता रहा है। समय-समय पर बड़े-बड़े साहसी व्यक्ति हिमालय पर पशु-पक्षी और विविध प्रकार की वनस्पतियों की खोज के लिए जाते रहे हैं। हिमालय के जन्तु और पौधे, वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से हमारे लिए एक अत्यन्त गौरव की वस्तु तथा एक महत्वपूर्ण धन हैं। आधुनिक जन्तु-विज्ञान के अनुसार हिमालय के कुछ मुख्य स्तनपोषी जन्तुओं (मैमल्स) का संक्षिप्त परिचय देना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

जन्तु और वनस्पति जीवन में एक बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी स्थान के जन्तुओं को समझने के लिए वहाँ की वनस्पतियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। अतः अच्छा हो कि जन्तुओं का परिचय देने से पहले हम हिमालय के वनस्पतिवितरण का संक्षिप्त दिग्दर्शन करते जायें।

बढ़ती हुई ऊँचाई और बदलती हुए जलवायु के साथ वनस्पति और जन्तुओं दोनों ही में अनेक प्रकार की विविधता और विभिन्नता आती-जाती रहती है। हिमालय के पूर्व में ६५०० फीट तथा पश्चिम में ५००० फीट की ऊँचाई तक सघन वनों का ऊष्ण कटिबन्धीय भाग है जिसमें तरह-तरह के आर्किड्स तथा लगभग ३५० जातियों के स्थलीय और अन्य पौधों के ऊपर उगने वाले पौधे उपस्थित हैं। यहाँ के आगे लगभग १२००० फीट की ऊँचाई तक शीतोष्ण भाग है जिसमें ओक (बांज), चीड़ और बुरूंश (रोडोडेन्ड्रान) हैं, तथा पूर्वी भाग में पांगर (चेसनट), मेपल, मेग्नेलिया और लौरल आदि के विभिन्न भेद उपस्थित हैं। कुल्लू तथा कुमायूं जैसे स्थानों में, जहाँ वर्षा बहुत अधिक नहीं है, सेब, खुमानी, अखरोट, नारंगी तथा नाशपाती जैसे फल भी बहुत होते है। १२००० फीट से ऊपर वनों की सघनता कम होने लगती है। कुछ ऊँचाई तक भोजपत्र तथा बिलो नामक वृक्ष और छोटी रोडोडेन्ड्रान दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे खुले चरागाह हैं जिनमें कि ग्रीष्मऋतु में विभिन्न प्रकार के चमकीले पुष्प शोभायमान होते हैं। इन चरागाहों को बुग्याल कहते हैं। हिमालय के पूर्वी भाग में वनस्पति अधिक घनी है, अपेक्षाकृत पश्चिमी भाग के। १५००० से १६००० फीट की ऊँचाई से स्थिर हिम की रेखा है।

जलवायु तथा वनस्पति जीवन के इस प्रारम्भिक वर्णन के पश्चात् हिमालय के कुछ मनोरंजक और महत्वपूर्ण स्तनपोषी जन्तुओं का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

लंगूर :

लंगूर की दो जातियाँ हिमालय में देखने को मिलती हैं। एक है सेम्नोपिथेकस ऐन्टेलस और दूसरी है सेम्नोपिथेकस शिस्टेशियस। पहली जाति हिमालय के नीचे अर्थात् आधार वाले स्थानों पर है और दूसरी काश्मीर से भूटान तक हिमालय के अधिकांश भाग में ६००० से १२००० फीट की ऊँचाई तक मिल सकती है। से० शिस्टेशियस का आकार ऐन्टेलस से अधिक बड़ा होता है, तथा उसके कान ऐन्टेलस के कानों से छोटे होते हैं। दोनों ही शुद्ध शाकाहारी जन्तु हैं। साधारण बन्दरों की अपेक्षा वे बहुत अधिक नाजुक होते हैं जिसके कारण मनुष्य के द्वारा उनका पाला जाना कठिन है। बन्दरों की तरह ये जन्तु भी समूहों में रहते हैं। लंगूर बहुत ही चुस्त प्राणी है और ठीक अनुमान के साथ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक लगभग ४० फीट तक की कूदान ले सकता है। लंगूरों की आवाज प्राय: बहुत अधिक ऊँची होती है, और वह प्रात:काल और सायंकाल सुनाई देती है। यद्यपि हिन्दुओं के द्वारा लंगूर पूज्य जन्तु है, किन्तु मनुष्य के निवासस्थानों के पास आकर यह जब तरह-तरह के उत्पात मचाते हैं तो हानिकर सिद्ध होते हैं, क्योंकि बन्दरों की तरह यह भी खाने-पीने की तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं को लेकर भाग जाता है।

बिल्ली वंश (फेलिडी) के जन्तु—

जैसे कि बाघ या शेर, तेन्दुआ या चीता, हिम तेन्दुआ, क्लाउडैड तेन्दुआ, मार्बिल्ड बिल्ली, स्वर्ण बिल्ली, वन विडाल (फिशिंग कैट), चीता बिल्ली, जंगली बिल्ली तथा लिंक्स आदि जन्तु हिमालय के विभिन्न स्थानों में पाये जाते हैं। ये सब शिकारी, माँसाहारी जन्तु हैं। पैने दाँत, नख, तीव्र गति, बहुत अधिक शारीरिक क्रियाशीलता तथा देखने, सूँघने आदि की विलक्षण शक्तियों ने इन जन्तुओं को इस योग्य बना दिया है कि ये अपने से भी बड़े आकार के जन्तु को खोज सकें, पकड़ सकें और उसको मारकर अपना भोजन प्राप्त कर सकें।

बाघ या शेर हिमालय के नीचे वाले वनों में पाये जाते हैं। वे ६००० या ७००० फीट की ऊँचाई तक भी जा सकते हैं, किन्तु हिमालय के भीतरी भागों में शेर नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर मनुष्य के लिए हानिकारक हैं और लाभदायक भी। वे हमारे घरेलू जानवरों को पकड़ कर ले जाते हैं। साधारणतः वे मनुष्य से बहुत डरते हैं किन्तु विशेष परिस्थितियों में पड़कर शेर आदमखोर भी बन सकता है। ऐसे समय तो वह एक आतंक का कारण बन जाता है और उसको मारने के अनेक उपाय किये जाते हैं। शेर की खाल, उसके दाँत तथा नख आदि घरों की सजावट तथा अनेक प्रकार के जादू-टोने आदि के काम आते हैं।

तेंदुआ या चीता चित्तीदार हिंसक जन्तु है जिसके रंग तथा आकार के आधार पर कितने ही भेद हैं। हिमालय के नम जंगलों में पाये जाने वाले तेंदुए का रंग गहरा और अधिक लाल होता है तथा चित्तियाँ अधिक बड़ी होती हैं। तेंदुआ शेर की अपेक्षा अधिक निडर है। वह मनुष्यों के निवासस्थानों के पास आकर रात के समय कुत्ते, भेड़, बकरी आदि पालतू पशुओं को पकड़ कर ले जाता है। शेर की तरह तेंदुआ भी मानव-भक्षी बन सकता है और तब वह मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होता है।

हिम तेंदुआ हिमालय के ऊँचे स्थानों पर, विशेषरूप से तिब्बत की ओर सिंध और सतलज नदियों की ऊपर वाली घाटियों में पाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में ६००० फीट से नीचे इसको कभी नहीं देखा गया किन्तु शीत ऋतु में ६००० फीट नीचे तक भी आ सकता है। आकार साधारण तेंदुए जैसा ही, अर्थात लगभग सिर से पूँछ तक ६ या ८ फीट लम्बा और २ फीट ऊँचा है। त्वचा ऊनी, लम्बे, घने बालों वाली है। पीठ का रंग पृथ्वी के रंग के जैसा अर्थात बहुत अधिक पीला, सफेद, भूरा तथा उदर का रंग सफेद है। सारे शरीर पर काली चित्तियाँ हैं जो कि साधारण तेंदुए की चित्तियों से बड़ी अर्थात जिनका व्यास २ इंच से अधिक है। भेड़, बकरी, कुत्ते आदि इस जन्तु के भोजन हैं, अतः यह पहाड़ी गाँववालों के लिए हानिकर है किन्तु आज तक यह कभी नहीं सुना गया कि इसने कभी किसी मनुष्य पर आक्रमण किया हो।

क्लाउडेड तेंदुआ, दक्षिण-पूर्वी हिमालय में लगभग ६००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। आकार में साधारण तेंदुए से कुछ छोटा, किन्तु लम्बाई ५ फीट से अधिक होती है। त्वचा का रंग पिंगल भूरा या पीला गेंहुँआ है जिसके ऊपर अनियमित आकृति की बहुत बड़ी-बड़ी (व्यास २ इंच से अधिक, काली चित्तियों की पट्टियां बिखरी हुई होती हैं। यह अधिक समय वृक्षों पर व्यतीत करता है।

मार्बिल्ड बिल्ली हिमालय के पूर्वी भाग में पाई जाती है। घरेलू बिल्ली से कुछ बड़ी किन्तु लम्बाई ५ फीट से अधिक नहीं होती। रंग तथा चित्तियों आदि में कुछ-कुछ क्लाउडेड तेंदुए के ही सदृश है। इसके स्वभाव आदि के विषय में बहुत कुछ तो ज्ञात नहीं है सिवाय इसके कि यह सम्भवतः वृक्ष पर रहने वाला भयंकर किन्तु शर्मीला जन्तु है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ण बिल्ली दक्षिण-पूर्वी हिमालय की साधारण ऊँचाई पर मिलती है। आकार में मार्बिल्ड बिल्ली से बड़ी तथा क्लाउडेड तेंदुए से छोटी होती है। त्वचा तथा पीठ पर लाल पिंगल किन्तु उदर सफेद है।

बन विडाल हिमालय के बहुत नीचे वाले भागों में पाया जाता है। लम्बाई लगभग साढ़े तीन फीट और ऊँचाई लगभग १५ इंच होती है। पीठ पर रंग पिंगल भूरा किन्तु पार्श्वों में तथा उदर पर हल्का पीला और सफेद होता जाता है। काले या गहरे पिंगल रंग की अनियमित चित्तियाँ उपस्थित होती हैं जिनमें से अधिकाँश कम लम्बी और चौड़ी अधिक होती हैं। बन विडाल घने दलदली जंगलों में नदियों के समीप रहते हैं। अपने वंश के सब जन्तुओं से इसमें एक विशेषता यह है कि मछलियाँ इसका प्रिय भोजन हैं और इसलिए इसको "फिशिंग कैट" भी कहते हैं।

चीता बिल्ला, हिमालय में सब स्थानों पर और पश्चिम में विशेषरूप से शिमला तक खूब पाया जाता है। और घरेलू बिल्ली के जैसा है या उससे भी कुछ छोटा है, किन्तु टाँगे अधिक लम्बी हैं। इसके रंग में बहुत अधिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं और इसलिए इसके कई भेद और उपभेद किये गये हैं। हिमालय में पाये जाने वालों का रंग पीठ और पार्श्वों पर पीला, लाल, पिंगल होता है। चित्तियाँ कोणदार पर अधिकांशत: त्रिकोणदार होती हैं, जिनके शिखर पीछे की ओर को संकेत करते हैं। प्रत्येक चित्ती का अगला भाग पिंगल और पिछला भाग काला होता है। पक्षी तथा छोटे चौपाये इस बिल्ली के प्रिय भोजन हैं।

जंगली बिलाव सारे भारतवर्ष में पाया जाने वाला साधारण जंगली जन्तु है। हिमालय पर यह लगभग ६००० या ८००० फीट ऊँचाई तक मिल सकता है। आकार साधारण घरेलू बिल्ली से कुछ बड़ा है। सिर से पूँछ तक लम्बाई तीन फीट और ऊँचाई लगभग १६ इंच तक हो सकती है। अधिक ऊँचाई पर रहने वाली बिल्लियों के बाल लम्बे तथा मैदानों में रहने वाली बिल्लियों के बाल छोटे होते चले जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि बाल शीत के प्रति रक्षा के साधन हैं। पीठ पर रंग गहरा रेतीला भूरा, पीला भूरा या भूरा पिंगल किन्तु उदर पर हल्का सफेद होता जाता है। छोटे पक्षी और छोटे स्तनपोषी जन्तु इसके भोजन हैं। गाँवों में घरों के पास आकर यह बिल्ली, पालतू तीतर, मुर्गियों, मोर, खरगोश आदि जन्तुओं का भक्षण करके मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं।

लिंक्स सिंध नदी की ऊपर वाली घाटी में, गिलगिट, लद्दाख और तिब्बत में तथा हिमालय के उत्तर वाले एशिया और एल्पास के ऊपर वाले यूरोप के भागों में पाया जाता है। गिलगिट में ५००० फीट की ऊँचाई पर तथा तिब्बत में १४००० या १५००० फीट तक भी इसको प्राप्त किया गया है। यह एक बड़ी दृढ़ शरीर वाली बिल्ली है जिसकी टाँगे लम्बी और पूँछ छोटी होती है। सिर से पूँछ तक की लम्बाई लगभग ४० इंच हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। पूँछ लगभग ८ इंच लम्बी है। भार लगभग ६० पाउँड है। कपोलों के पिछले भाग के बाल लम्बे हैं और पीछे को लटकते हैं। पीठ पर रंग पीला; रेतीला भूरा या कुछ-कुछ लाल हो सकता है। नीचे वाले भाग सफेद हैं। तिब्बत का लिंक्स खुले में तथा यूरोप का लिंक्स घने जगलों में रहता है जिसके कारण तिब्बत वाले लिंक्स का रंग कुछ अधिक पीला होता है। पैर की उंगलियों पर बाल भी कुछ अधिक छोटे होते हैं। लिंक्स हिंसक जन्तु है। शिकार करने में यह बहुत सुविधा से पेड़ों पर चढ़ सकता है।

सिवेट बिल्लियाँ :

वाइवेरिडी वंश के इन जन्तुओं के चेहरे और शरीर साधारण बिल्लियों की अपेक्षा कुछ लम्बे किन्तु टाँगें, पैर, भुजाएँ छोटी होती हैं। सिवेट बिल्लियों के शरीर से सिवेट नामक सुगन्धित पदार्थ निकलता है जो कि अपनी आकर्षक सुगन्ध के लिए ही प्रयोग में आता है। यह पदार्थ नर और मादा दोनों में मूत्रद्वार के पास स्थित एक लम्बी झिर्री जैसे छिद्र से बाहर निकलता है। गुदा के पास एक दूसरा दुर्गन्धित पदार्थ भी निकलता है। सिवेट बिल्लियों की चार जातियाँ हिमालय में पायी जाती हैं।

साधारण भारतीय सिवेट सिर से पूँछ के अन्त तक ५० इंच लम्बी होती है। पूँछ १८ इंच है। रंग कुछ पिंगल है और पार्श्वों में काले रंग की अस्पष्ट पटिटयाँ हो सकती हैं। यह जन्तु सिक्किम, नेपाल और हिमालय पर भी पर्याप्त ऊँचाई तक पाया जाता है। स्वभाव अकेले रहने का है। दिन में झाड़ियों या छोटी घास में छिपा रहता है, रात को भोजन के लिए निकलता है। मुर्गी, बत्तख, साँप, मेंढ़क, छोटे स्तनधारी जन्तु, अण्डे, फल और जड़ें सब इसके भोजन हैं।

एक दूसरी प्रकार की अर्थात चित्तीदार टाइगर सिवेट दक्षिण-पूर्वी हिमालय में पायी जाती है। पीठ का रंग पीला पिंगल और काली चित्तियों से चित्रित है। उदर का रंग सफेद और चित्ती रहित है। पूँछ से आगे शरीर की लम्बाई लगभग १५ इन्च, पूँछ लगभग १३ इन्च और ऊँचाई लगभग ५ इन्च है। यह बहुत सुन्दर और छोटा जन्तु है जो कि जमीन व वृक्ष दोनों पर सुविधा से रह सकता है। छोटे पक्षी इसका भोजन हैं।

तीसरी प्रकार की जाति हिमालय की पाम सिवेट है, जो कि सारे हिमालय पर लगभग ६५०० फीट ऊँचाई तक मिलती है। पूँछ के आगे शरीर की लम्बाई २५ इन्च के लगभग है। पूँछ की लम्बाई भी इतनी ही होगी। पीठ का रंग सारे में भूरा चित्ती या पहरीरहित तथा उदर का रंग हल्का पीला या सफेद होता है। फल, शाक, पक्षी और छोटे स्तनधारी जन्तु इसके भोजन हैं। वृक्षों के छिद्र इसके निवासस्थान है, अतः यह जन्तु अधिकतर वृक्षों पर जीवन व्यतीत करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेवले :

इन जन्तुओं से हम सब भली-भाँति परिचित हैं। ये स्थलचर जन्तु हैं जो कि वृक्षों पर बहुत कम चढ़ते हैं। पक्षी, छिपकलियाँ, साँप, छोटे स्तनधारी जन्तु, कीड़े, अंडे और फल इनके भोजन हैं। साँपों के तो ये कट्टर शत्रु हैं। ये जमीन के भीतर अथवा खोखले वृक्षों में बने बिलों में रहते हैं। किसी प्रकार से भी उत्तेजित होने पर इनके सारे शरीर के और विशेष रूप से पूँछ के बाल खड़े हो जाते हैं। न्योलों की तीन मुख्य जातियाँ हिमालय में मिलती हैं।

"छोटा भारतीय न्योला (नेवला)" सिक्किम से काश्मीर तक हिमालय के नीचे वाले भागों में मिलता है। अधिक विस्तार से फैली हुई जाति इससे कुछ बड़ी है और उसे "साधारण भारतीय नेवला" कहते हैं। चूहे तथा साँपों के प्रति घर को रक्षित रखने के लिए ये न्योले एक बहुत उपयोगी जन्तु हैं। एक तीसरी जाति 'केकड़े खाने वाला न्योला" है। शरीर का आकार साधारण न्योले के आकार से कुछ बड़ा है। यद्यपि पूँछ अपेक्षाकृत छोटी होती है। केकड़े और मेंढ़क इसके प्रिय भोजन हैं। तीनों प्रकार की जातियाँ हिमालय के केवल नीचे वाले भागों में ही मिलती हैं।

भेड़िये, गीदड़, कुत्ते और लोमड़ियाँ (फैमिली—कैनाइडी) ये सब अधिकतर मांसाहारी और शिकारी जन्तु हैं। इनमें से कुछ कीड़े और फल तथा सड़े माँस को भी खाते हैं। इन सब में सूँघने, देखने और सुनने की बड़ी तीक्ष्ण शक्ति होती है।

भेड़िया हिमालय के उत्तर में स्थित भागों में मिलता है। तिब्बत और लद्दाख में पाया जाने वाला भेड़िया कुछ पीले रंग का होता है। पक्षी और स्तनधारी जन्तु भेड़ियों के भोजन हैं। वे भेड़, बकरी और मनुष्यों के बच्चों को उठाकर ले जाते हैं। कभी-कभी बहुत से भेड़िये मिलकर घोड़े तथा अन्य बड़े पशुओं पर भी आक्रमण कर देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर भेड़िये सड़ा माँस और शाक आदि भी खा लेते हैं।

गीदड़ घने जंगल या खुले स्थानों में मैदानों और पहाड़ों में घने बसे शहरों में भारतवर्ष में हर स्थान पर पाया जाता है। हिमालय पर लगभग ५००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। पशु-पक्षी, सड़ा-गला माँस, फल विशेषरूप से बेर, गन्ना और मक्का गीदड़ के भोजन हैं। गीदड़ जैसा कि हम सब जानते हैं निशाचर जन्तु हैं जो कि दिन में कहीं छिपे रहते हैं और रात्रि के समय भोजन-भक्षण आदि का अपना क्रियाशील जीवन प्रारम्भ करते हैं। गीदड़ शहरों और कस्बों की सफाई करने के लिए एक अच्छा मेहतर है क्योंकि यह जन्तुओं के मृत शरीरों को तथा सड़े-गले माँस आदि को उठाकर ले जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगली कुत्ता काश्मीर से आसाम तक हिमालय के सब जंगलों में पाया जाता है। गिलगिट, लद्दाख, सिंध की ऊपरी घाटी तथा पूर्वी तिब्बत में भी यह मिलता है। आकृति गीदड़ जैसी है। हिमालय और तिब्बत के जंगली कुत्तों के बाल लम्बे होते हैं। लम्बे बालों के नीचे ऊनी रोवाँ होता है। पूँछ ब्रुश जैसी है। पीठ का रंग मैला लाल या पिंगल भूरा तथा उदर की ओर रंग पीला होता है। शरीर लगभग तीन फीट लम्बा तथा बालोंसहित पूँछ लगभग सवा फुट लम्बी हो सकती है। विभिन्न प्रकार के मृग और हिरण इनके सर्वप्रिय भोजन हैं। ६ से १२ और कभी २० तक के समूहों में मिलकर ये हिरणों और मृगों पर आक्रमण करते हैं। मनुष्य के द्वारा इन कुत्तों का पाला जाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

लोमड़ियाँ यद्यपि कैनाइडी वंश के जन्तु हैं, किन्तु फिर भी भेड़ियों और गीदड़ों से इनमें बहुत स्पष्ट भेद मिलते हैं। इनकी पूँछ और शरीर अधिक लम्बी तथा भुजाएँ और टाँगे छोटी होती हैं। पूँछ शेष शरीर की आधी लम्बाई से अधिक होती है और उसमें ऊपर लम्बे बाल होते हैं। कान बहुत बड़े हैं। लोमड़ियाँ निशाचर जन्तु हैं। दिन में बिलों या खाइयों तथा लम्बी घास या झाड़ियों में छिपे रहते हैं। ये एकाकी जन्तु हैं। कीड़े और फल इनके प्रिय भोजन हैं। लोमड़ियों की बुद्धि, चतुरता और चालाकी प्रसिद्ध ही है। हिमालय में पाये जाने वाली मुख्य जाति 'वलपेस एलोपेम्स' है जो कि ५००० फीट से अधिक ऊँचाई पर मिलती है। इसकी पीठ के बीच वाले भाग का रंग सफेद और पीली चित्तियों से युक्त लाल पिंगल या कुछ में गहरा लोहे जैसा भूरा होता है। कंधों पर पट्टियाँ स्पष्ट या कुछ अस्पष्ट उपस्थित हो सकती हैं। जिन पर मैले पीले से रंग की चित्तियाँ स्पष्ट हैं। पीठ के पीछे वाले भाग का रंग सफेद चित्तियों से युक्त भूरा होता है। पार्श्व पीले हैं। उदर पर क्रीमी सफेद से काले रंग तक की चित्तियाँ मिलती हैं। शीत की अपेक्षा गर्मी में रंग अधिक पीला हो जाता है। बसन्त ऋतु में जब जाड़े वाले बाल झड़ जाते हैं तो जन्तु को पहचानना बहुत कठिन हो जाता है। नीचे से बचे बालों का रंग पीठ पर भूरा पिंगल से काला तक हो सकता है। पार्श्व पीला तथा उदर सफेद दिखलाई देने लगता है। पूँछ को छोड़कर शेष शरीर की लम्बाई २ फीट के लगभग होगी। बालों सहित पूँछ १८ या २० इन्च की होती है। अधिक ऊँचाई पर रहने वाली लोमड़ियों का रंग अधिक पीला होता है। और छोटे-छोटे जन्तु, जैसे कि खरगोश, मुर्गी, बटेर, और अन्य छोटे पक्षी इसके भोजन हैं। अतः यह मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक है। कीड़े, शहद के छत्ते, फल तथा अंड़े आदि भी ये लोमड़ियाँ खा लेती हैं।

चितशल वंश के जन्तु (मारटेन्स) पालतू बिल्ली के आकार के जन्तु हैं जो कि अपना अधिकांश जीवन वृक्षों पर व्यतीत करते हैं। इनकी दो मुख्य जातियाँ हिमालय में पाई जाती हैं। एक जाति मुस्टेला फलेविगुला है जो कि काश्मीर से आसाम तक सारे हिमालय में ८००० फीट की ऊँचाई तक ही मिलती है इससे ऊपर नहीं। कुमाऊँ और गढ़वाल में इस जन्तु को चितराल कहते हैं। इसकी पूँछ लम्बी और घने बालों वाली है। शरीर का रंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकांश रूप से पिंगल है। कहीं पर पीला पिंगल और कहीं पर काला पिंगल। पक्षी, अंडे, छोटे स्तनधारी जन्तु, छिपकलियाँ, साँप, कीड़े और फल इसके भोजन हैं। दूसरी जाति "मुस्टेला फोइना" है जो कि लगभग सारे हिमालय में पायी जाती है। इसकी पूँछ पहले की अपेक्षा कुछ छोटी होती है। रंग भूरा पिंगल से काले पिंगल तक हो सकता है। यह गाँवों के आस-पास आकर गाँववालों की मुर्गियों को खा जाता है।

मुस्टेलिडी वंश के दूसरे मुख्य जन्तु "वीसेल्स" हैं जिसकी चार या पाँच जातियाँ हिमालय पर ३००० से १३००० फीट तक की ऊँचाई पर पाई जाती है। ये बहुत माँसाहारी जन्तु हैं जो अपने से कई गुने बड़े जन्तु को मार सकते हैं। पूँछ को छोड़कर शरीर का आकार लगभग एक या सवा फीट लम्बा होता है। टाँगे और भुजाएँ छोटी हैं और शरीर की आकृति कृमि जैसी प्रतीत होती है। रंग में लाल पिंगल और पीले की आभाएँ मिलती हैं।

मुस्टेलिडी बंश का एक जन्तु पिंगल फेरेट बेजर है जो हिमालय पर नेपाल और सिक्किम में पाया जाता है। पूँछ लगभग ९ इन्च लम्बी और शेष सारा शरीर लगभग १६ इन्च लम्बा है। लम्बी टाँगे और भुजाएँ छोटी होती हैं। यह जन्तु जंगलों में रहता है और रात में भोजन के लिए निकलता है।

बिज्जू :

यह जन्तु जो कि कब्र खोदकर अपने भोजन के लिए मृत शरीरों को निकालने के लिए प्रसिद्ध है, हिमालय के केवल नीचे वाले भागों में रहता है। शरीर ३२ इन्च, पूँछ ५ इन्च तथा रंग पीठ पर सफ़ेद, पार्श्वों, टाँगों और भुजाओं पर काला है। पृथ्वी के नीचे बिल या वृक्ष इसके स्थान हैं। जन्तु निशाचर प्रवृत्ति का है और रात को ही अपने भोजन के लिए निकलता है। चूहे, पक्षी, मेंढ़क, कीड़े, मुर्गी, फल, जड़, शहद और शहद की मक्खी सब इसके भोजन हैं, अतः यह मनुष्य के लिए बहुत हानिकर है।

ऊदबिलाव :

नदी या पानी के अन्य स्थानों के पास सुरंगे बनाकर रहने वाले इस लगभग बिल्ली के आकार के जन्तु की कई जातियाँ हिमालय में पाई जाती हैं। पैर छोटे, दृढ़, गोल और उंगलियों के बीच तैरने के लिए झिल्ली फैली रहती है। पूंछ लम्बी, चपटी और मोटी है। मछलियाँ, मेंढ़क, केकड़े आदि इसके भोजन हैं। भारतवर्ष के कई स्थानों में ऊदबिलाव को मछेरे इसलिए पालते हैं कि यह उनकी मछली पकड़ने में सहायता करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय का रैकून :

यह जन्तु दक्षिणी-पूर्वी हिमालय में ६००० फीट से १२००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पूंछ बालों सहित लगभग १६ इन्च और शेष सारे शरीर की लम्बाई २४ इन्च के लगभग है। बाल लम्बे, मोटे और घने होते हैं। पैर और उँगलियाँ बालों से ढकी हैं। पीठ का रंग मैला लाल, टाँगे और भुजाएँ काली, पूंछ पर पीली पट्टियां, चेहरा सफेद आदि शरीर के साधारण रंग हैं। रैकून वृक्षों पर रहने वाला शाकाहारी जन्तु है।

भालू :

भालू या रीछ की दो जातियां हिमालय में पायी जाती हैं। एक है लाल पिंगल भालू और दूसरा है काला भालू। गर्मी में ये भालू बहुत अधिक ऊँचाई अर्थात बर्फ के समीप तक चले जाते हैं, किन्तु शीत ऋतु में लगभग ५००० फीट से भी नीचे चले जाते हैं। फल, शाक, कीड़े शहद तथा भेड़ और बकरी आदि पशु इनके भोजन हैं और मनुष्य पर आक्रमण कर सकता है।

दुरंगी चूहा :

यह चूहा पूर्वी हिमालय में ४००० फीट से ६००० फीट ऊँचाई तक मिलता है। बाल लम्बे हैं और बालों के बीच-बीच में चपटे काँटे भी उपस्थित हैं। पूंछ ६ इन्च लम्बी और शेष शरीर की लम्बाई लगभग साढ़े पाँच इन्च होती है। पीठ का रंग पिंगल और नीचे सफेद इसलिए इसको दुरंगी चूहा कहते हैं।

कपिल बांस चूहा :

पूर्वी हिमालय के नीचे वाले भागों में, विशेषकर नेपाल, सिक्किम, आसाम, मनीपुर और बर्मा में यह सर्वत्र मिलता है। पूंछ लगभग तीन इंच लम्बी और शेष शरीर लगभग ९ इंच लम्बा होता है। पेड़ों की जड़ों के नीचे बिल तथा लम्बी घास इसके निवासस्थान हैं। तरह-तरह की घासों और विशेषरूप से अनाज और बाँस की जड़े तथा अन्य भाग इसके भोजन हैं। बर्मा की पहाड़ी जातियाँ इसको भोजन के रूप में प्रयोग करती हैं।

हाथी :

हाथी से हम सब अच्छी तरह से परिचित हैं। हाथियों के झुंड हिमालय के नीचे वाले भागों में घने जंगलों में सब स्थानों पर पाये जाते हैं। यद्यपि गंगा की पहाड़ियों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ३००० फीट की ऊँचाई तक भी चढ़ जाता है, किन्तु हिमालय की तलहटी तक ही हाथी सीमित हो गए हैं। हाथी बहुत अधिक ऊँचाई पर नहीं जाते।

गेंडा :

नाक के ऊपर सींग वाला, मोटी खाल का यह भारी-भरकम जन्तु किसी समय सिक्किम की तराई में तथा हिमालय के नीचे नेपाल में बहुलता से पाया जाता था किन्तु आजकल यह केवल आसाम के मैदानों में सीमित रह गया है। घनी घास से युक्त कीचड़ वाले स्थान इसको पसन्द हैं और यह कीचड़ में लेटने में विशेष आनन्द लेता है। यह कभी पहाड़ों पर नही चढ़ता। घास इसका विशेष भोजन है।

गौर या गौरी गाय :

लगभग ५ या ६ फीट ऊँचा और ६ या ८ फीट लम्बा गौवंश का यह पिंगल जन्तु गंगा के मैदानों में हिमालय के समीप पाया जाता है। पहाड़ों पर चढ़ने में भी यह निपुण है। इसका भोजन घास है और कभी-कभी खेती को हानि करते भी सुना गया है। इनको पालने के प्रयत्न अब तक विफल ही होते रहे हैं।

याक :

गौवंश का यह जन्तु जंगली अवस्था में गहरे पिंगल रंग का और आकार में लगभग ६ फीट ऊँचा और ७ फीट लम्बा, तिब्बत में लगभग १४००० फीट से २०००० तक की ऊँचाई तक मिलता है। भारतीय सीमा में यह केवल उत्तरी लद्दाख में उपस्थित है। इसको शीत, जंगल और एकाकी स्थान प्रिय हैं। सारे स्तनधारियों में यही सबसे अधिक ऊँचाई तक जा सकता है। घास इसका भोजन है, पानी बहुत अधिक पीता है और शीत ऋतु में बर्फ भी खाता है। लोग इसको दूध के लिए, बोझा ढ़ोने के लिए और माँस के लिए पालते हैं। पालतू याक आकार में छोटे और रंग में विभिन्न होते हैं। इनकी पूंछ से मक्खियाँ उडाने के लिए चंवर बनती हैं।

भेड़ :

भेड़ों की तीन मुख्य जातियाँ हिमालय के आस-पास मिलती हैं। सबसे बड़ी तिब्बती भेड़ जो कि तिब्बत में लद्दाख से लेकर सिक्किम तक १२००० से १५००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है। एक दूसरी कुछ छोटी जाति है "उरियल" या "शा" जो कि लद्दाख और उत्तरी-पूर्वी तिब्बत में पायी जाती है। तीसरी जाति है "भरल" जो कि अपने लक्षणों में बहुत कुछ बकरी के सदृश है। यह तिब्बत और मुख्य हिमालय पर १०,००० से १६००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइबेक्स :

एक प्रकार की जंगली पहाड़ी बकरी है जो कि हिमालय पर बहुत अधिक ऊँचाई पर बर्फ के समीप पायी जाती है। शीत ऋतु में रंग पिंगल किन्तु ग्रीष्म ऋतु में कुछ-कुछ हल्का पीला हो जाता है। बकरे की ठोड़ी में से घने बालों वाली दाढ़ी नीचे को लटकती है।

तेहर :

यह भी बकरी जैसा ही एक जन्तु है जो कि पीरपंजाल से लेकर सिक्किम तक हिमालय में सब स्थानों पर ऊँचे जंगलों में पाया जाता है। रंग गहरा या लाल पिंगल है और शरीर पर घने लम्बे बाल होते हैं।

सेरो :

शरीर भारी, सिर और कान बड़े, रंग काला या गहरा भूरा, आकार पूँछ के अतिरिक्त ४ फीट लम्बा और ३ फीट ऊँचा, पूँछ लगभग ६ इन्च लम्बी, नर और मादा दोनों में सींग उपस्थित, इस प्रकार ये लक्षणों वाला यह एकाकी जन्तु सारे हिमालय में ६००० से १२००० फीट तक की ऊँचाई पर मिलता है।

गोरल :

काले सींग, पिंगल रंग और बकरी की आकृति वाला यह जन्तु हिमालय में सबसे अधिक जाना-पहचाना हुआ है। यह काश्मीर से भूटान तक हिमालय में ३००० फीट से ८००० फीट की ऊँचाई तक सब स्थानों पर मिलता है। चार या आठ के झुंड में ये जन्तु जंगलों के बीच, घास वाली पहाड़ियों पर या चट्टानी जमीन पर घूमते देखे जा सकते हैं।

नील गाय :

घोड़े की आकृति का यह जन्तु हिमालय के नीचे वाले भागों में पाया जाता है। नर का रंग नीला भूरा या पिंगल भूरा होता है और इसके गले से एक दाड़ी निकलती है। मादाएँ पिंगल होती हैं। बेरों और अन्य पेड़ों की पत्तियाँ और खट्टे फल इसके विशेष भोजन हैं। यह खेती को बहुत हानि पहुँचाता है।

हिरन :

यह हिमालय के नीचे खुले छोटी घास वाले मैदानों में रहने वाला यूथचारी जन्तु है। मादा और युवा नर का रंग पीठ और पार्श्वों पर हल्का पीला पिंगल तथा नीचे की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेद होता है। वृद्ध नर काले होते हैं। ऊँचाई ३२ इन्च, लम्बाई ४ फीट और पूंछ लगभग ७ इन्च की है। इसका माँस बहुत रुचिकर समझा जाता है।

तिब्बती गजेला :

बड़ी-बड़ी आँखों वाला यह एक छोटे हिरन जैसा जन्तु तिब्बत में, लद्दाख में, नेपाल और सिक्किम के उत्तर में सूने शीतस्थानों में लगभग १३००० फीट से १८००० फीट ऊँचाई तक मिलता है। गर्मी में रंग भूरा तथा शीत में पीला पिंगल होता है।

मृग :

मृग वंश के जन्तु हिरण से यह इस बात में भिन्न है कि उनके सींग अस्थिर होते हैं और समय-समय पर पुराने सींग नये सींगों के द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं। हिरणों के सींग स्थिर होते हैं। अधिकांश मृगों में केवल नर जन्तु ही सींगधारी होता है किन्तु हिरणों में मादाओं के भी सींग हो सकते हैं। काकड़, बारहसिंगा, सांभर, चीतल और कस्तूरिया पाँच प्रकार के मुख्य मृग हिमालय में पाये जाते हैं।

काकड़ :

घने जंगलों में हिमालय पर लगभग ५००० या ६००० फीट ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका माँस साधारण मृग के माँस से बहुत अच्छा समझा जाता है। बारहसिंगा हिमालय के नीचे वाले खुले जंगलों में मिलता है। सांभर सबसे बड़े आकार का भारतीय मृग है जो कि ९००० या १०,००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। चीतल जिसके ऊपर सफेद चित्तियाँ होती हैं, हिमालय के नीचे वाले स्थानों में पाया जाता है। कस्तूरिया मृग सारे हिमालय में ८००० से १२००० फीट की ऊँचाई तक घने जंगलों में पाया जाता है। कस्तूरी तथा स्वादिष्ट माँस के लिए इसको जालों में फँसाया तथा इसका अन्य प्रकार से शिकार किया जाता है।

सूअर :

दो प्रकार के सूअर हिमालय में मिलते हैं—एक है साधारण जंगली सूअर और दूसरा है छोटा बौना सूअर।

साधारण जंगली सूअर का कद लगभग ५ फीट लम्बा, २८ से ३६ इंच ऊँचा और लगभग १ फीट लम्बी पूंछ वाला जन्तु हिमालय में १५००० फीट की ऊँचाई तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा गया है। दलदली स्थान इसको बहुत पसन्द है। दलदली पौधों की जड़ें इसका प्रिय भोजन है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर माँस भी खा लेता है। यह जन्तु खेती को बहुत हानि पहुँचाता है। बौना सूअर नेपाल, सिक्किम और भूटान के हिमालय के नीचे वाले भागों में मिलता है। रंग पिंगल या काला, लम्बाई २६ इंच और ऊँचाई १ फीट के लगभग होती है।

सल्लू :

इसकी दो जातियाँ हिमालय पर मिलती हैं—एक है भारतीय सल्लू और दूसरी है चीनी सल्लू। इन जन्तुओं का सिर छोटा, लम्बा और नुकीला, मुख और आँखे छोटी होती हैं। सिर के ऊपर वाला भाग, शरीर, पीठ और पार्श्व, पूँछ तथा टाँगों और भुजाओं की वाहरी सतह सब पिंगल शल्कों से ढकी है। शेष शरीर पर थोड़े-थोड़े बाल उपस्थित हैं। ये जन्तु पृथ्वी में बिल बनाकर रहते हैं। ये बाहर को निकल आने वाली लम्बी जिह्वा से चींटी और दीमक पकड़ कर खाते हैं। आक्रमण होने पर ये सम्पूर्ण शरीर को एक गेंद की आकृति में लपेट लेते हैं। शरीर लगभग २ फीट लम्बा तथा पूँछ लगभग सवा या डेढ़ फीट लम्बी हो सकती है। भारतीय सल्लू हिमालय के नीचे वाले भागों में अधिकतर पश्चिम की ओर मिलता है। चीनी सल्लू हिमालय पर नेपाल की ओर मिलता है। चीनी सल्लू का शरीर अधिक संकीर्ण, शल्क छोटे और रंग अधिक गहरा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धानन्द वीथिका

पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

— ब्रजेन्द्र जैरथ
पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्रद्धानन्द वीथिका में स्वामी श्रद्धानन्द जी, जिन्हें सुविख्यात गुरुकुल की आधार-शिला रखने का श्रेय प्राप्त है, के जीवन से सम्बन्धित चित्र बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शित हैं।

वह स्थान जहाँ पहले-पहल १९०२ में स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना की, काँगड़ी ग्राम पुण्यभूमि के नाम से जाना जाता है। लेकिन १९२४ ई. में भयानक बाढ़ के कारण, जिसमें सम्पूर्ण विश्वविद्यालय तहस-नहस हो गया, गुरुकुल को जहाँ आज यह स्थित है, लाया गया। गुरुकुल की पहली इमारत, जो कि पुण्यभूमि में रही, का चित्र भी यहाँ देखने को मिलता है।

इस वीथिका में गुरुकुल और स्वामी जी के साथ-साथ उनके परिवार, उनके सहयोगियों के चित्र भी विविधता से प्रदर्शित किये गये हैं। स्वामी जी का वास्तविक नाम मुंशीराम था। उन्होंने अपनी जीविका एक वकील की हैसियत से शुरु की तथा नायब तहसीलदार से होते हुए तहसीलदार के पद तक पहुँचे। इसी क्रम से उनके चित्र इस वीथिका में दिखाए गये हैं।

स्वामी जी के गुरु अथवा पद-प्रदर्शक महर्षि दयानन्द जी का चित्र भी यहाँ मौजूद है। इनके साथ ही साथ स्वामी जी के निकट सहयोगी ठाकुर माधवसिंह जी, श्री सुब्रह्मणियम जी, नामाद, भंडारी शालिग्राम, लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, श्री पेटरसन, गोपालकृष्ण गोखले, श्री सी. एफ. एन्ड्रूज, डा० एम. ए. अंसारी, हकीम अजमल खाँ, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि के चित्र भी यहाँ बखूबी दिखाए गये हैं।

१९१२ ई. में काँगड़ी गाँव में गुरुकुल की स्थापना के बाद वे आचार्य और फिर मुख्य अधिष्ठाता बने। मुंशीराम जी एवं उनके उद्देश्य का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि सन् १९१६ में स्वयं वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड और जेम्स मस्तन ने इस गुरुकुल का परिभ्रमण किया। तभी से यह कह सकते हैं कि गुरुकुल की पूर्णरूप से स्थापना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। उसी समय से इसकी ख्याति देश में दूर-दूर तक फैल गई।

आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रभावित स्वामी श्रद्धानन्द जी काफी हद तक महात्मा गाँधी से भी प्रभावित हुए। अगर स्वामी जी और महात्मा गाँधी की तस्वीरों और पत्राचार की तरफ ध्यान दें तो स्पष्ट हो जाता है कि इनके परस्पर काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। स्वामी जी ने स्वाधीनता-संग्राम में एक अहम भूमिका निभाई। गाँधी जी के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई, स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लिया। सन् १९१९ में आप कांग्रेस कमेटी की अमृतसर बैठक के अध्यक्ष चुने गये। यह बैठक ऐसी संकट की घड़ी में रखी गई, जबकि सम्पूर्ण भारत जलियाँवाला काण्ड से हतप्रभ और साथ-साथ अंग्रेजी शासन की निर्मम क्रूरता के प्रति गुस्से में धधक रहा था।

६ अप्रैल सन् १९१७ को स्वामी श्रद्धानन्द जी ने साँसारिक जीवन को त्यागकर संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। संन्यासी-जीवन से सम्बन्धित सभी विभिन्न पहलुओं को वीथिका में विविध-चित्रों की शक्ल में प्रस्तुत किया गया है।

स्वामी जी का शुद्धि-आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। हिन्दू पुर्नत्थान में उनकी गूढ़ निष्ठा थी। छुआ-छूत की भावना को दूर करने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। उनका विचार था कि राजनैतिक स्वतंत्रता से पहले सामाजिक कुरीतियों को मिटाना ज्यादा आवश्यक है। यही कारण था उन्होंने हिन्दू-संस्कृति को ऊपर उठाने और आपसी एकता पर बल दिया। इसी कारण वे विवाद का विषय भी बन गये और कुछ कट्टर मुस्लिम उनके घोर आलोचक बन गये, जिसके फलस्वरूप उन्हें धमकियाँ भरे कुछ पत्र भी मिले, जिन्हें वे नजरअंदाज करते गये। मगर होनी तो पूर्वनिश्चित थी। बीमारी की हालत में अब्दुल रशीद नाम के मुसलमान के हाथों वे गोलियों से भेद दिये गये। इस तरह आर्य समाज के एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त हुआ।

स्वामी जी के असंख्य अनुयायियों का समुदाय था। भारत के एक महानतम पुत्र और अपने प्रिय नेता को श्रद्धाँजलि अर्पित करने के लिए उनकी अन्तिम यात्रा में एक विशाल जनसमुदाय निकल पड़ा था। अब भी रोमांचित करते ये चित्र वीथिका में देखने को मिलते हैं।

स्वामी जी के वस्त्र यहाँ शीशे के शोकेस में सुरक्षित रखे हैं। स्वामी जी ने देश और विदेशों में दूर-दूर तक भ्रमण किया। इन यात्राओं के दौरान उन्हें अपने शुभ-चिंतकों से जाने कितने ही उपहार मिले जिन्हें उन्होंने संग्रहालय को समर्पित कर दिया। ये सभी वस्तुएँ वीथिका के संरक्षण में रखी हैं। इनमें से कुछ सजावटी वस्तुएँ हैं और कुछ कलाकृतियाँ उन्हें बर्मा से प्राप्त हुई हैं।

कुछ जानी-मानी प्रतिभाओं के चित्र भी यहाँ प्रदर्शित हैं। इनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती, जामा मस्जिद में धर्म-उपदेश देते हुए स्वामी जी, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, हंसराज जी, पं. लेखराम जी, श्री स्वामी दर्शनानन्द जी और श्री स्वामी ब्रजानन्द जी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रभाषा का स्वरूप और आयाम

डा० विष्णुदत्त राकेश
हिन्दी विभागाध्यक्ष, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

किसी राष्ट्र की सम्पूर्ण परम्पराओं और जीवन-धारणाओं का वहन करने वाली भाषा, जो विविधताओं में एकता स्थापित करती है, राष्ट्रभाषा कहलाती है। देश की आत्मनिर्भरता और समृद्धि राष्ट्रभाषा पर निर्भर करती है। उसके अभाव में देश गूँगा और जातियाँ पंगु हो जाती हैं।

स्वामी दयानंद और महात्मा गांधी ने इसीलिए कहा था कि जैसे अंगरेज अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में ही बोलता है और व्यवहार करता है, वैसे ही प्रत्येक भारतीय को भारतमाता की एक भाषा बनाने का गौरव हिन्दी को देना चाहिए। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। अंग्रेजी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने हिन्दी के समर्थन में कहा था –"देश के सबसे ज्यादा हिस्से में हिन्दी ही बोली जाती है। अगर हम साधारण बुद्धि से काम लें तब भी हमें पता चलेगा कि हमारी क़ौमी ज़बान हिन्दी ही हो सकती है।" यही कारण है कि १४ सितम्बर १९४९ ई० को संविधान सभा में दक्षिणभारतीय सदस्य श्री गोपालस्वामी आयंगर ने यह प्रस्ताव रखा कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। संविधान सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने मतदान कराया और इस प्रस्ताव के विरुद्ध एक भी मत न आने से इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकृत मान लिया। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में एक ही मिट्टी की उपज होने के कारण एक आंतरिक सम्बन्ध है और यह भावात्मक तथा चेतनागत सम्बन्ध समस्त देश को विविधताओं के बावजूद एक बनाए हुए है। सम्पर्क-भाषा के रूप में भी हिन्दी समर्थ है क्योंकि पूरे देश में उसे बोलने-समझने में कोई कठिनाई नहीं है।

चेतनागत दृष्टि से भारतीय साहित्य में मूलभूत एकता का दर्शन होता है। संस्कृत के बाद तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, मराठी, बँगला, उड़िया, असमिया, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी तथा कश्मीरी में भाषागत भिन्नता के रहते हुए भी अभूतपूर्व समानता लक्षित होती है। पंजाबी, सिंधी, हिन्दी तथा उर्दू की प्रादेशिक सीमाएँ एक-दूसरे से सटी हुई हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। गुजराती और मराठी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला, असमिया तथा उड़िया भी एक-दूसरे के प्रभाव से ओतप्रोत हैं। सम्पूर्ण देशवासियों ने एकता के होते हुए भी इन भाषाओं के वैशिष्ट्य को पृथक से स्वीकार किया है। तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु का अवधान साहित्य, मलयालम का संदेश काव्य तथा कलिप्पाट्टु, मराठी का पवाड़ा, गुजराती का आख्यानफागु, बंगला का मंगलकाव्य, असमिया के बड़गीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के प्रेमाख्यान और वीर गीत, उर्दू की गज़ल तथा हिन्दी के भक्ति-गीत अलग-अलग पहचान रखते हुए भी मौलिक एकता से गूँथे हुए हैं, वैसे ही जैसे अनेक धर्मों, जीवनपद्धतियों और विचारधाराओं के रहते हुए भी भारतीयों की मूलभूत पहचान एक है। (भारतीय भाषाओं का पारिवारिक रूप यद्यपि भिन्न है पर उनकी साहित्यिक चेतना एक है।) हिन्दी ने अपनी इसी समन्वय और सम्पर्कजन्य प्रवृत्ति से इन भाषाओं के साहित्य की मूलचेतना का निर्वाह किया है और समान राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि में विकसित होकर एक समानता को जन्म दिया है। यही समानता भाषा के बाहरी ढाँचे की भिन्नता के बावजूद हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं की सम्पर्क कड़ी बनाती है। अतः वीर-प्रशस्ति, नाथ संत वाणी, भक्ति-साहित्य, पुनर्जागरण, राष्ट्रीयता, समाजवादी समाज और लोकतंत्र तथा आधुनिक विज्ञान की विचारधारा को स्वीकार करने के कारण हिन्दी तथा भारत की अन्य सभी भाषाएँ एक कुल में आकर खड़ी हो जाती हैं। विशेषकर आधुनिक साहित्य का विकासक्रम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में समान है। राष्ट्रीय आन्दोलन के देशव्यापी रूप को खड़ा करने में हिन्दी ने अहम भूमिका अदा की, इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला।

अंग्रेजीपरस्त लोगों ने हिन्दी और भारतीय भाषाओं के आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए तथा भारतीय जीवन की धुरी 'साधारण आदमी' को उपेक्षित करने के लिए राष्ट्रभाषा के स्वरूप और उसकी संभावनाओं को धूमिल करने का सुनियोजित षड्यंत्र किया। आज यदि स्थिति का सर्वेक्षण किया जाए तो आप देखेंगे कि भारत में ही नहीं अपितु बर्मा, लंका, ब्रिटिश गयाना, मलाया, त्रिनीदाद, इन्डोनेशिया, फीजी, मारीशस, नेपाल तथा अंडमान आदि स्थानों पर भी हिन्दीभाषा-भाषी उपलब्ध हैं। दुनियाँ के शिक्षणसंस्थानों में, अमेरिका, इंग्लैड, रूस, जापान, तथा चीन में हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्यापन होता है। अतः अब हिन्दी राष्ट्रविशेष तक सीमित न होकर पूरे विश्व में फैल गई है।

कहा यह जाता है कि हिन्दी कविता की भाषा है, उसमें वैज्ञानिक, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी के सूक्ष्मविचारों को व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं है और इसका प्रमुख कारण है पारिभाषिक शब्दावली का अभाव। अतः राजकाज की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग नहीं हो सकता। देश-विदेश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक विचारधाराओं को भी हिन्दी में वहन करने का अभाव है और अब जब कम्प्यूटर पर कार्य होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा है तब हिन्दी कैसे कामकाज की भाषा बन सकती है ? ऐसा आरोप वही लोग लगाते हैं जो विदेशी भाषाओं का वर्चस्व बनाए रख कर, भारतीय भाषाओं का अवमूल्यन करना चाहते हैं। हिन्दी से इतर भाषाभाषियों की संख्या कम है और हिन्दीभाषी संख्या में अधिक हैं। अतः हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरव से वंचित करने के लिए हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में भी स्पर्द्धा पैदा करने की कोशिश की जाती है। ऐसे लोग कहते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की होड़ में हिन्दी का सहारा लेकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। हिन्दी को आप भावात्मक वस्तु समझें, यह अंग्रेजी की तरह उपकरणभाषा नहीं हो सकती। मेरा कहना है कि क्या कविता, कला, संगीत, विज्ञान और तकनीक अलग-अलग संवेदनों से फूटते हैं और क्या इनके प्रादुर्भाव के लिए भिन्न-भिन्न शरीरतंत्रों की आवश्यकता है। जब स्वभाषा में कविता, कला फूटती है तो विज्ञान और तकनीक क्यों नहीं ? हिन्दी में विज्ञान और तकनीक की उद्‌भावना क्यों नहीं हो सकती ? रही शब्दों की बात, तो आप शब्द गढ़ते जाइए तो जो चलने वाले होंगे, वे चल जाएँगे और शेष रह जाएँगे। हाँ, शब्द बनाते हुए यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि नवनिर्मित शब्द वाँछित अर्थ के कितना निकट है। उदाहरण के लिए 'एयरकंडिशन्ड' के लिए आपने वातानुकूलित शब्द बनाय और वह चल निकला, पर टेलीविजन के लिए 'दूरवीक्षण' शब्द नहीं चल सका लेकिन 'दूरदर्शन' लोकप्रिय हो गया।

विज्ञान के लिए हिन्दी में शब्द गढ़ने तथा वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने का काम 'प्रयाग की विज्ञान परिषद्' ने १९१३ में शुरू किया था। हिन्दीमाध्यम से जनसाधारण तक विज्ञान को पहुँचाने के लिए 'विज्ञान' पत्रिका निकाली गई और आज भी ७० वर्ष से यह बराबर निकल रही है। रामदास गौड़, सालिग्राम भार्गव, गोरखप्रसाद, फूलदेव सहाय, गोवर्धन शास्त्री, डा० सत्यप्रकाश, महेशचरण सिन्हा जैसे महानुभावों ने विज्ञान पर हिन्दी में लिखना शुरू किया और स्वतंत्रता के बाद तो 'कौंसिल आफ साइंटिफिक तथा इंडस्ट्रियल रिसर्च' ने 'विज्ञान प्रगति' निकाल कर उच्चतम स्तर तक के विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाया। चीन में तो विज्ञान के हर विषय का बृहद् साहित्य अपनी भाषा में उपलब्ध कराया जाता है तथा उच्चतम स्तर का सब कार्य वहाँ की भाषा में होता है। रूस में अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में छपे शोधकार्य का अनुवाद रूसी में होता है तथा आंतरिक शोधसंगोष्ठियों में अपनी भाषा में ही उन पर विचारविमर्श को प्रोत्साहित किया जाता है। अमरीका में भी रूसी विज्ञान और तकनीक के बृहद् अनुवाद की योजनाएँ हैं। जापानियों की भी यही स्थिति है। हिन्दी में भी चिकित्साशास्त्र, इन्जीनियरिंग, भौतिक तथा जैविक विज्ञान आदि के कार्य हिन्दी में हो रहे हैं, पर अध्यापकों तथा नीतिनिर्धारकों की गुलामीवृत्ति के कारण हिन्दी को प्रोत्साहन नहीं मिल पा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर राष्ट्रभाषा के लिए एक चुनौती आधुनिक ज्ञान- विज्ञान को आत्मसात करने की भी है। इसके लिए हिन्दी में प्राधिकृत पारिभाषिक शब्दावली तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनी है। दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए भी उपयुक्त शब्द गढ़ने हैं। दिनमान में विदेशी घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए आवश्यकतानुसार अज्ञेय जी ने अनेक ऐसे शब्दों का निर्माण किया जो सम्पर्कभाषा के रूप में हिन्दी के लिए जरूरी थे। पारिभाषिक शब्दों की एकरूपता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। एटम को अणु, परमाणु या जीवाणु कहना तथा इंस्पैक्टर को अधीक्षक, निरीक्षक या पर्यवेक्षक कहना अराजकता को पैदा करना है। इस दिशा में शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा निर्मित विज्ञान, तकनीक, कृषि, वनविज्ञान, नृविज्ञान, रक्षा, खेलकूद, भूविज्ञान, प्रशासन, मनोविज्ञान, पुरातत्त्व, गृहविज्ञान आदि विषयों की शब्दावली तथा पारिभाषिक कोशों का उपयोग वाँछित होगा। विभिन्न राज्यों की हिन्दी अकादमियों तथा सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं ने भी अनेक ग्रन्थों का निर्माण कराया है। नौवहन, परिवहन, संचार, वाणिज्य, रक्षा, विधि, कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार पर भी हिन्दी में मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें उपलब्ध हैं। दिन-प्रतिदिन के अनुसंधानों का परिचय विज्ञान प्रगति पत्रिका, बाल विज्ञान, आविष्कार, पर्यावरण, वानस्पतिकी, भौतिकी, इंजीनियरी, प्राणीलोक, आयुर्विज्ञान, आदि पत्रिकाओं में मिलता रहता है। मुद्रणयंत्रों तथा टंकणयंत्रों में भी अपेक्षित सुधार हुआ है। श्री हरिबाबू कंसल के विशेष प्रयत्न पर देवनागरी लिपि में कम्प्यूटर निर्माण की बात भी उठी थी। जब रूसी, चीनी, अरबी तथा हिब्रू आदि लिपियों के कम्प्यूटर हैं, तो हिन्दी में क्यों नहीं बन सकते? इस दिशा में पहल हैदराबाद की इलैक्ट्रोनिक कारपोरेशन ने की थी, और जापान ने भी एक नमूना भारत के इलैक्ट्रोनिकी आयोग को भेजा था। १९८२ के एशियाड खेलों के विवरण कम्प्यूटर द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए थे।

यह बात सत्य है कि राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता के लिए तकनीकी स्वायत्तता होनी चाहिए। यह ध्यान में रखकर सूचनासंग्रह, संसाधन संप्रेषण के लिए टाइपराइटर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सैटेलाइट तथा कम्प्यूटर कम्यूनिकेशन नेटवर्क जैसी तकनीकें विकसित हुईं। क्योंकि देवनागरी कुंजीपटल, रोमन कुंजीपटल से भिन्न है, अतः परिवर्द्धित देवनागरी पटल की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। वर्णसंख्या, लेखनविधि तथा लेखनदिशा की भिन्नता से भी हिन्दी का कम्प्यूटर जटिल होगा। इस दिशा में पिलानी, बंगलूर, कानपुर में काफी शोध हुआ है, पर लिपि डिजाइन, मानकीकरण, आंगिक तथा प्रक्रियापक्ष, टाइपसैटिंग तथा ध्वनिपहचान यंत्र की दृष्टि से अभी बहुत कुछ करना बाकी है। कम्प्यूटर की सहायता से हिन्दीशिक्षण का आयाम अभी बहुत कुछ अस्पष्ट है।

हिन्दी का एक और आयाम है—अनुवाद की अद्यतनता। आए दिन विश्व में हो रहे अनुसन्धान, राजनीतिक बयानबाजी, साहित्य, कला, संस्कृति और प्राकृतिक घटनाओं का परिचय पाने के लिए देश-विदेश की सामग्री का अपनी भाषा में परिचय अत्यावश्यक है। अतः स्वाभाविक ही किसी भाषा-भाषी को अपटूडेट होने के लिए द्विभाषी होना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, पाश्चात्य विज्ञान, टेक्नोलोजी, मानविकी तथा चिकित्सा की शोधसामग्री, यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो हिन्दी में लानी होगी। इसके लिए अनुवाद की व्यवस्था बड़े पैमाने पर करनी होगी जो तुरन्त उस सामग्री को प्रस्तुत कर सके। अध्यापक, शोधार्थी, वैज्ञानिक तथा विद्यार्थी यदि हिन्दी के प्रयुक्तिपरक अध्ययन में नहीं लगेंगे तो लक्ष्य प्राप्त न कर सकेंगे। विधि या कानून की भाषा बनाने के लिए तथा न्यायिक सेवाओं में प्रयोग के लिए हिन्दी को प्रोत्साहन देना होगा। राज्य सरकारें तथा क्षेत्रीय विश्वविद्यालय मिलकर यदि यह कार्य करेंगे तो इस दिशा में भी सफलता मिलेगी।

हिन्दी ने दूरदर्शन और रेडियो पर समाचार बुलेटिनों के प्रसारण में भी सफलता प्राप्त की है। कृषि, सिंचाई, विद्युत, उत्पादन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सांसदिक गतिविधियाँ, राजनीतिक उलटफेर, भूकम्प, महामारी, पर्यावरण, खेलकूद, पर्वतारोहण, भेंटवार्त्ता, डाक्यूमेंट्री फिल्म, अभिनय तथा सामान्य जीवन की अनेक संवेदनाओं को हिन्दी माध्यम से लाखों लोगों तक पहुँचाना होता है। हिन्दी ने इसके लिए विशेष शब्द गढ़े हैं। और यह कहने में कोई संकोच नहीं, विश्वसंवेदना को मुखर करने में हिन्दी पूर्णतया समर्थ है। कमेंट्री की विधा में भी हिन्दी लोकप्रिय हुई है। तात्पर्य यह है कि जनसंचार के क्षेत्र में भी हिन्दी की प्रगति उसे राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के विश्वव्यापी होने में एक साधन देवनागरी लिपि की भूमिका भी है। आज अंग्रेजी के कारण रोमन लिपि विश्व में स्वीकृत है पर रोमनलिपि की अ-वैज्ञानिकता सर्वविदित है। विनोबा जी का यह स्वप्न था कि नागरीलिपि को विश्व-नागरी का रूप दिया जा सकता है। उन्होंने 'गीता प्रवचन' को इसीलिए भारत की सभी भाषाओं में अपनी लिपि के साथ देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित कराया जिससे परस्पर भाषाओं को सीखने का अवसर लोगों को मिल सके। कुछ संकेतों को जोड़कर नागरी को तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम लिखने योग्य बनाया जा सकता है तथा चीनी, जापानी, अरबी, फारसी भी कुछ संकेत और चिन्हों के साथ नागरी में लिखी-पढ़ी जा सकती हैं। इन भाषाओं के साहित्य का नागरी लिप्यंतरण सरल है और ऐसा होने पर देवनागरी भारत तथा एशिया की भाषाओं को एक-दूसरे के निकट लाने में खुले दरवाजे का कार्य करेगी।

अगर राष्ट्रीय और राजकीय संदर्भों में हिन्दी प्रशासनिक प्रयोजनों और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होती है, तो बहुभाषी भारत को एकता के सूत्र में जोड़कर सम्पर्कभाषा का कार्य भी कर सकती है। आज राष्ट्रभाषा का विचार करते हुए यह देखना होगा कि यदि हिन्दी के अतिरिक्त हम किसी दूसरी भाषा को वह दर्जा देते हैं तो क्या यह समूचे भारत की जातीय और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है? क्या उसका आंतर-भारती रूप निर्मित हो सका है? क्या हिन्दी से बढ़ कर उसमें वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य निर्मित हुआ है? क्या राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंच पर उसका प्रयोग किया जा सकता है और क्या उसकी लिपि कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ भारतीय और एशियाई भाषाओं के लिप्यंतरण में सहायक हो सकती है ? ये थोड़े से वे विचारबिंदु हैं जिन्हें राष्ट्रभाषा के आयामों के रूप में देखा जा सकता है। ये कितने स्पष्ट हैं और कितने अस्पष्ट, इसका निर्णय आपको खुले मन से करना है। मेरी राय में हिन्दी यदि भारतीयस्तर पर प्रतिष्ठित हो जाती है और उसका भारतीय भाषाओं से आदान-प्रदान शुरू हो जाता है तो उसे विश्वमंच पर लाने की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी। हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीयरूप इससे पहले विकसित नहीं हो सकता। उसके मानकरूप का निर्धारण विश्व की वर्तमान भाषाओं के संदर्भ में होना चाहिए। हिन्दी अपने विकासक्रम में भी किसी एक भाषा की पिछलग्गू नहीं रही है। वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, व्यापारिक और राजनीतिक माध्यम के रूप में सक्षम रही है, पर जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा, शासन की भाषा या सम्पर्क भाषा बनाने की बात उठी तो एक समझी जाने वाली हिन्दी के अनेक रूप हो गए और इसी स्थिति ने विवादों को पैदा कर दिया। आवश्यकता है, हिन्दी के मानकरूप की तलाश हो। वह संवैधानिक, प्रशासकीय और कार्यालयीय आदेशों-निर्देशों के साथ-साथ तमाम ज्ञान-विज्ञान का उच्चस्तरीय माध्यम बन सके तथा बहुभाषी देश की भाषाओं के मध्य सम्पर्क कड़ी का काम कर सके। अर्थात् स्वरूप की दृष्टि से राष्ट्रभाषा के तीन आयाम होंगे— प्रशासन, उच्चशिक्षा और शोध तथा जनसम्पर्क। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी को दो प्रथम संदर्भ मिले और इन्हीं संदर्भों के कारण उसकी सामर्थ्य को चुनौती भी दी गई। इन चुनौतियों को स्वीकार कर हिन्दी ने अपना रास्ता बनाया और वह युग-संदर्भ में नये रूप में ढली है। वह किसी भाषा का विकल्प नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व है जिसकी अपनी परम्परा है और अपनी प्रयोगधर्मिता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक-समीक्षा)

पुस्तक—शोध-संदर्भ—१
सम्पादक—डा० गिरिराज शरण अग्रवाल
डा० मीना अग्रवाल
प्रकाशक—हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर
पृष्ठ—६२०; डिमा० ८०;
मूल्य—१२०.०० रु०

भारतीय विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रताप्राप्ति से पूर्व तक केवल आठ स्थानों पर हिन्दी विषय में शोधकार्य हो रहा था। जिस वर्ष शोध-संदर्भ–१ प्रकाशित हुआ, उस वर्ष तक लगभग ७० विश्वविद्यालयों में हिन्दी के उच्चतर अध्ययन और अनुसंधान का कार्य सम्पन्न होने लगा। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को १९३४ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम डी० लिट्० की शोधोपाधि से विभूषित किया था। तब से लेकर आज तक लगभग नौ हज़ार विद्वान् पी-एच०डी० और डी० लिट्० की उपाधियों से विभूषित हो चुके हैं। इनमें से ४५०१ विवरण शोध-संदर्भ के प्रथम भाग में प्रस्तुत किए गए हैं।

डा० उदयभानु सिंह ने बहुत पहले 'हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रवन्ध' पुस्तक में विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्वीकृत शोधप्रबन्धों की सूची संक्षिप्त-सार के साथ प्रस्तुत की थी, किन्तु यह कार्य एक निश्चित अवधि तक की सामग्री पर ही आधारित था। इसके अतिरिक्त शोधप्रबंध के प्रकाशन, निर्देशन तथा प्राप्तिस्थान की सूचना भी इसमें नहीं थी। किन्हीं कारणों से १९६४ के बाद फिर उस ग्रंथ के संशोधित-परिवर्धित पुनर्मुद्रण भी नहीं हो सके। यों सभी विश्वविद्यालय अपने यहाँ के स्वीकृत शोधप्रबंधों की सूचनाएँ प्रकाशित करते रहते हैं पर सभी विश्वविद्यालयों में सम्पन्न शोधकार्य का एक स्थान पर विवरण उपलब्ध नहीं होता। अतः इस अभाव की अनुभूति प्रायः सभी शोधार्थियों और शोध–निर्देशकों को हो रही थी। १९७६ में भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग के मुखपत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दी अनुशीलन' का शोध–विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें हिन्दी शोध की सम्पूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करा दी गयी थीं तथा विषयों का वर्गीकरण भी किया गया था। परिशिष्ट में शोधकर्त्ताओं की नामानुक्रमणिका दी गयी थी। अन्य आवश्यक जानकारी के अभाव में इस सूचीपत्र को पूर्ण संदर्भग्रंथ नहीं कहा जा सकता। अतः इस क्षेत्र में एक ऐसे सर्वांगपूर्ण ग्रंथ की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जो वर्गीकृत विषयों से लेकर शोधकर्त्ता तक की जानकारी एक स्थान पर उपलब्ध करा सके।

एम०फिल्०, पी-एच०डी०, डी० लिट्० के शोधार्थी यदि एक स्थान पर इस सारी सामग्री का परिचय प्राप्त करने की स्थिति में हों तभी वे नयी शोध समस्याएँ और स्थापनाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। शोध की दिशा और दृष्टि तभी मिल सकती है। शोध की प्रतिज्ञा और रूपरेखा के निर्माण के लिये पूर्वप्रस्तुत सामग्री का अध्ययन अपेक्षित होता है, क्योंकि विषय के प्रतिपादन के संतुलित विकास-क्रम के सूत्र इस वर्गीकृत वैचारिक ढाँचे में बुने रहते हैं। रूपरेखा के स्वरूप को निर्धारित करने में शोधक्षेत्र की मूलसामग्री का परिचय बड़ा महत्त्व रखता है। मूलसामग्री से सम्बन्धित तथ्यों के विवरण के अभाव में शोधार्थी किस नवीन स्थापना का संकेत देगा? शोधकार्य ज्ञानार्जन की प्रवृत्तिप्रक्रिया है। इस दिशा में अध्यवसाय, तत्परता, क्षेत्रीय कार्यनिष्ठा तथा ज्ञान की प्रचण्ड लालसा रखने वाला व्यक्ति ही उपयोगी कार्य कर सकता है।

प्रसन्नता की बात है कि वर्द्धमान कालेज बिजनौर के हिन्दी प्राध्यापक डा० गिरिराज शरण अग्रवाल और उनकी पत्नी डा० मीना अग्रवाल ने १९८० तक के स्वीकृत हिन्दी शोधप्रबंधों का विवरण आकलित कर, शोधसंदर्भ के प्रथम भाग का प्रकाशन हिन्दी साहित्य निकेतन बिजनौर से कराया है। शोधसंदर्भ का दूसरा भाग, जो ८० के बाद के कार्य से सम्बन्धित है, प्रकाशित हो चुका है। ६२० पृष्ठों के प्रथम भाग में सम्पादकद्वय ने प्रवृष्टियों को सर्वांगता देने का पूरा प्रयत्न किया है। विवरण-क्रम इस प्रकार रखा गया है— क्रमांक, प्रबन्धलेखक का नाम, जन्मतिथि अथवा वर्ष, शोध का विषय, विश्वविद्यालय या शोधसंस्थान का नाम, उपाधिप्राप्त का वर्ष, प्रकाशन का पूर्ण विवरण, शोध–निर्देशक का नाम तथा प्रबन्धलेखक का उपलब्ध पता। विषयों के वर्गीकरण में भी सावधानी बरती गयी है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल की प्रवृत्तियों, काव्यरूपों, संवेध बिन्दुओं तथा साहित्य और साहित्येतर मानकों पर विवेचित, विश्लेषित शोधप्रबन्धों का वर्गीकरण इस ग्रंथ में है। यों काव्यशास्त्रीय, साधना-सम्प्रदायपरक, भाषिक संरचनाप्रधान तथा लोकजीवनपरक अध्ययनों का वस्तु, वाद-विचार तथा शैलीप्रधान विवरण प्रस्तुत करने में सम्पादक ने सूझ-बूझ का परिचय दिया है, पर यदि शोधप्रबंधों की मूलस्थापनाओं और निष्कर्षों का उल्लेख भी यथास्थान कर दिया जाता तो ग्रंथ की उपयोगिता और बढ़ जाती। साहित्यकार-विशेष से सम्बन्धित शोधप्रबंधों के विवरण देने में संपादकों ने जीवन-दर्शन, काव्य, भाषा, संस्कृति, समाज,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलनात्मक दृष्टि, संवेदना-शिल्प, सौन्दर्यशास्त्र तथा वैचारिक परिदृश्य से सम्बन्धित सामग्री का उपविभाजन भी कर दिया है, इससे शोधार्थी को उन दृष्टि-विन्दुओं का परिचय मिल जाता है जिनके आधार पर शोधकार्य हो चुका है और नये कार्य की संभावना दृष्टिगत होने लगती है। परिशिष्ट में हिन्दी शोधकार्य के स्थलों की सूची, शोधप्रबन्धों के प्रकाशकों की सूची और शोधार्थियों की नामानुक्रमणिका भी दी गयी है। इस तरह उपयोगी सामग्री से संवलित यह शोधसंदर्भ ग्रंथ हिन्दी शोधार्थियों के लिए नितान्त संग्रहणीय और उपयोगी ग्रंथ बन गया है। शोध की राह पर अग्रसर होने वालों के लिये यह ग्रंथ मार्गदर्शक सिद्ध होगा। शोधकार्य में मौलिकता के समावेश के लिए इस तरह के संदर्भग्रंथों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

इस संग्रहणीय ग्रंथ के सम्पादन और प्रकाशन के लिए सम्पादकद्वय बधाई के पात्र हैं।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन-सहयोग

१—डा० राधेलाल वार्ष्णेय	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग
२—डा० योगेश्वरदत्त शर्मा	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग
३—डा० जयदेव वेदालंकार	—	रीडर तथा अध्यक्ष दर्शन विभाग
४—डा० भारतभूषण विद्यालंकार	—	रीडर, वेद विभाग
५—डा० जबरसिंह सेंगर	—	निदेशक, विश्वविद्यालय संग्रहालय
६—श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी	—	रीडर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग
७—डा० सन्तर[illegible]श्य	—	प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151378

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar